जनवरी - मार्च २००८

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

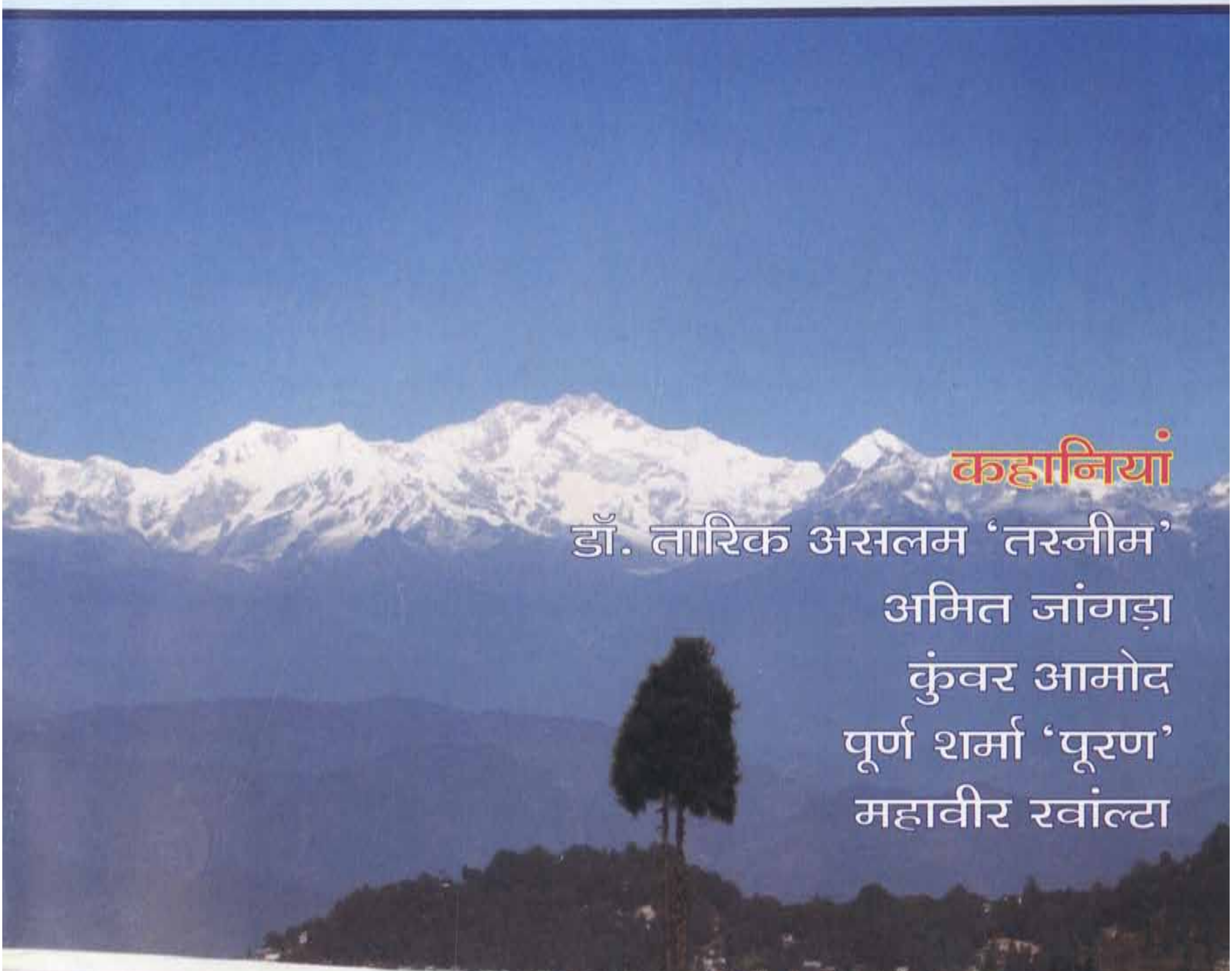

सागर-सीपी
डॉ. कृष्ण बिहारी सहल

आमने-सामने
महावीर रवांल्टा

१५ रुपये

पीढ़ियों से
अपने
गौरवपूर्ण इतिहास
के साथ
विश्वास की परंपरा
को क़ायम
रखते हुए
पहले शो-रूम
के रूप में
स्थापित

A House of Traditional Trust

बिटिया की सफलता पर गहने देने का वादा, पत्नी को प्यारा-सा तोहफ़ा परिवार में किसी की सगाई या शादी में या किसी मित्र को कोई उपहार देना हो तो आप श्री अलंकार ज्वेलर्स की दहलीज तक आइए और पायेंगे

खूबसूरत एवं नवीनतम डिजाईन का अनुपम संग्रह

और आप गहनों के साथ लेकर जायेंगे अपने घर एक अनूठ विश्वास और आईने सी सच्चाई

विश्वसनीयता का दूसरा नाम

श्री अलंकार ज्वेलर्स

मालवीय मार्ग, हज़ारीबाग

☎ : (06546) 223065 (O), 222551(R)

जनवरी – मार्च २००६

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड

कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१
e-mail : kathabimb@yahoo.com

(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुण सक्सेना
फोन : २३६८ ३७७५

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || जेहाद / **डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'**
|| १० || रूदन / **अमित जांगड़ा**
|| १५ || एक स्वप्न का अंत / **पूर्ण शर्मा 'पूरण'**
|| २० || चैटिंग / **कुंवर आमोद**
|| २३ || भंडारी उदास क्यों थे ? / **महावीर रवांल्टा**

लघुकथाएं

|| २६ || भूख / **हीरा लाल मिश्र**
|| ४५ || सार्थक कहानी / **डॉ. वी. रामशेष**
|| ४४ || युग आवश्यकता / **आनंद बिल्थरे**

ग़ज़लें / कविताएं / गीत

|| १४ || ग़ज़लें / **डॉ. क़मर रईस 'बहराइची' / डॉ. नसीम अख़्तर**
|| १४ || ग़ज़लें / **सच्चिदानंद 'इंसान' / भानु 'प्रकाश'**
|| ३४ || ग़ज़ल / **सतीश गुप्ता**
|| ३६ || प्रेमचंद की याद में / **प्रबोध कुमार गोविल**
|| ४३ || चला जाऊंगा दूर तक / **तेज राम शर्मा**
|| ४३ || विश्व बोध / **हितेश व्यास**
|| ४३ || अंगूठी / **शशिभूषण बड़ोनी**
|| ४४ || आओ घास के मैदान की ओर चलें / **रवींद्र स्वप्निल प्रजापति**
|| ४४ || वह दृश्य में चला जाता है / **रवींद्र स्वप्निल प्रजापति**
|| ४५ || ग़ज़ल / **डॉ. शंभुनाथ तिवारी**

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| २७ || 'आमने-सामने' / **महावीर रवांल्टा**
|| ३१ || 'सागर-सीपी' / **डॉ. कृष्ण बिहारी 'सहल'**
|| ३५ || 'वातायन' / **प्रबोध कुमार गोविल**
|| ३७ || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *मंजुश्री*
(दार्जिलिंग से कंचनजंघा पर्वत का एक दृश्य)

लेटर बॉक्स

"कथाबिंब" का जुलाई-दिसंबर ०५ अंक मिला. संपूर्ण सामग्री अतुलनीय है और कथा चयन भी प्रशंसनीय.

'औरत कोई सराय नहीं' (सलीम अख़्तर) अपनी भाषा और तारतम्यता की दृष्टि से अच्छी रचना बन गयी है तो वहीं 'आज की पांचाली' (जयनारायण) रेणु की परंपरा को आगे बढ़ाती है. इस रचना को मैंने न जाने कितनी बार पढ़ा और हर बार यह अनूठी लगी. इस रचना के रचनाकार के लेखन की जादूगरी को मेरा शत् शत् नमन. डॉ. देवेंद्र सिंह की कहानी भी अच्छी लगी. डॉ. प्रकाशकांत की कहानी 'इतने पर भी' पढ़ने पर लगा जैसे यह कोई मनोवैज्ञानिक रचना हो, साथ ही सरकारी योजनाओं की धज्जियां उड़ाती राजीव पत्थरिया की रचना ने भी यथार्थ से दो-चार करवा ही दिया. स्त्री के त्याग और बलिदान पर लिखी 'और बांध टूट गया' (भगीरथ शुक्ल) बेहतरीन रचना लगी.

लघुकथाओं में 'दहशत' (डॉ. तस्नीम) बहुत अच्छी लगी. सभी ग़ज़लें अच्छी हैं, ख़ासतौर से भगवान दास जैन की ग़ज़ल बेहद पसंद आयी. एक वाक्य में कहना चाहूंगा कि "कथाबिंब" सचमुच ऐसी साहित्यिक पत्रिका है जो साहित्यिक चोंचले बाज़ी से दूर तो है ही, राजनैतिक ड्रामे बाज़ी से भी इसका दूर-दूर तक वास्ता नहीं है.

✣ डॉ. पूरन सिंह
२४०, फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली - ११०००८.

जुलाई-सितंबर ०५ का अंक मिला. अभिमत पत्र भेजने में कुछ ज़्यादा विलंब हुआ. सबसे पहले तो मैं यह बात स्पष्ट कर दूं कि "कथाबिंब" एकमात्र ऐसी प्रतिनिधि पत्रिका है जहां केवल अच्छी और बहुत अच्छी कहानियों का प्रकाशन होता है. कहानी यदि कहीं से भी कमज़ोर हो अथवा उसमें कहानीपन न हो तो वह पत्रिका में जगह पा ही नहीं सकती. अतः किसे अच्छी कहना और किसे बेहतरीन कहना, थोड़ा कठिन हो जाता है.

✣ गोवर्धन यादव
१०३, कावेरीनगर, छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८०००१

"कथाबिंब" का जुलाई-सितंबर ०५ अंक प्राप्त हुआ. वैसे तो इस अंक की सभी कहानियां कुछ न कुछ ख़ासियत रखती हैं, किंतु दो कहानियों ने विशेष प्रभावित किया. श्री जयनारायण की 'आज की पांचाली' माटी या नारी जीवन की विवशतापूर्ण स्थितियों के दर्द को ही व्यक्त नहीं करती, आज़ादी के बाद की दुर्वह स्थितियों का भी दर्द उजागर करती है. इसकी पंक्ति-पंक्ति में व्यंग्य रचा पचा है जो बड़ी सहजता से नेतृ वर्ग के मुखौटों को उतार देता है. प्रगतिशीलता के सदंभों से जुड़ी इस कहानी का रचाव प्रभावशाली है. दूसरी कहानी है - सलीम अख़्तर की, जिसमें नारी जीवन की विवशताओं और मानवीय भावनाओं को सहजप्रभावी पद्धति से उकेर कर पुरुष की संकीर्ण मानसिकता पर प्रहार किये गये हैं. श्री सतीश दुबे से साक्षात्कार उनकी रचनाओं के रहस्यों को ही नहीं खोलता, सर्जनात्मक संदर्भों से जुड़े प्रश्नों पर भी बेबाक़ राय देता है. साहित्य की गुणवत्ता पर श्री गजेंद्र यथार्थ का चिंतन काफ़ी प्रासंगिक है. इसी क्रम में श्री अमित जांगड़ा, देवमणि पांडेय, भगवानदास जैन व राजेंद्र वर्मा की काव्य रचनाएं एवं डॉ. तारीक असलम 'तस्नीम' व योगेंद्रनाथ शुक्ल की लघुकथाएं अच्छी लगीं.

✣ डॉ. भगीरथ बड़ोले
२८६, विवेकानंद कालोनी, फ्रीगंज, उज्जैन-४५६ ०१०

"कथाबिंब" जुलाई-दिसंबर ०५ संयुक्तांक के रूप में मौसूल होकर मसर्रतो शादमानी का सबब बना हुआ है. संयुक्तांक को देखकर यह यक़ीन हो गया है कि अब मेरी प्रिय पत्रिका बरवक़्त और तसलसुल के साथ शाया हुआ करेगी. पत्रिका दूर-दराज़ के दानिशवरों तक पहुंच रही है यह ख़ुशी की बात है. मश्मूलात-रचनाएं मेयारी शाया करने के पहलू-ब-पहलू आप कंपोजिंग से लेकर साज-सज्जा, ख़ूबसूरत सरेवरक़ की इशाअत पर भी पूरी तवज्जा देते हैं. नतीजतन पत्रिका पाठकों और अहलेक़लम के लिए अज़ीज़तर होती जा रही है. "कुछ कही, कुछ अनकही" की सारी बातें हक़ बयानी की मज़हर हैं. कहानियों और लघुकथाओं के तअल्लुक़ से आपके हुस्ने इन्तिख़ाब की दाद न देना बददयानती होगी. "आमने-सामने" सबक़ आमूज़ है. "सागर-सीपी" के तहत जनाब डॉ. सतीश दुबे का यह जुमला सुनहरे हर्फ़ों में लिखे जाने के क़ाबिल है - "मैं लेखन को शब्दों की आराधना मानता हूं." जनाब देवेंद्र पाठक 'महरूम', जनाब राजेंद्र वर्मा, जनाब देवमणि पांडेय, जनाब वेद हिमांशु और जनाब भगवान दास जैन की ग़ज़लें लुत्फ़ के साथ पढ़ गया.' "टीवी वाली औरत" कविता बयकवक़्त औरत और इक्कीसवीं सदी के समाज के इस्तेहसाल की दास्तान बयान करने में कामयाब है. "कथाबिंब" के अप्रैल-जून २००५ अंक में शाया मेरी ग़ज़ल को जनाब डॉ. सतीश दुबे, इंदौर एवं जनाब राजेंद्र तिवारी, कानपुर, ने पसंद किया और पसंदीदगी के ख़ुतूत "कथाबिंब" में लिखे. इसके लिए मैं दोनों की ख़िदमत में इज़हारे तशक्कुर पेश करता हूं. आप और "कथाबिंब" के हक़ में समीमे क़ल्ब से दुआगुज़ार हूं. आबाद रखे दाता साक़ी तेरी महफ़िल को. आख़िर में जनाब नमित सक्सेना की आवरण तस्वीर के लिए मुबारकबाद कि मौसूफ़ ने मसनूई माहौल और प्रत्येक प्रकार के प्रदूषण से दिलो दिमाग़ को आज़ाद कराके क़ुदरत की गोद में समुद्र और दरख़्तों के साये में सैरो तफ़रीह का मौक़ा अता किया. मौसूफ़ की नज़्र एक शेर-

तुम मसव्विर हो तस्वीर बना सकते हो ।
मेरे जज़्बात की तस्वीर बना दो कोई ॥

✣ डॉ. नसीम अख़्तर
जे. २६/२०५, मतलउल-उलूम, कमलगढ़ा,
वाराणसी (उ. प्र.) २२१००१

मेरी जानकारी में "कथाबिंब" अकेली पत्रिका है जो साहित्यकार को पाठकों की अदालत में बयान दर्ज करने का अवसर अपने 'आमने-सामने' स्तंभ में देती है. अप्रैल-दिसंबर ०५ अंक के 'आमने-सामने' में रेणु माटी के कवि, लेखक संपादक श्री भोला पंडित 'प्रणयी' को खड़ा किया गया है.

श्री प्रणयी के बारे में 'दैनिक हिंदुस्तान' के २० फरवरी २००६ में छपी 'अपनी पहचान' शीर्षक कथा के इस अंश को "आईने में जो शख़्स दिखाई दे रहा है, वही तुम्हें पैरों पर खड़ा कर सकता है. यहां थोड़ी देर बैठो/इससे जान-पहचान करो/जब तक इस आदमी को नहीं जानोगे, कुछ नहीं कर सकोगे," कुछ कहना चाहूंगा.

अंग्रेजी में एक कहावत है सेल्फमेड मैन - स्वयं निर्मित शख़्सियत. प्रणयी ने अपने आपको पहचाना और अपने अच्छे कर्मों से अपनी पहचान बनायी. यह कोई मार्फ़ती साहित्यकार नहीं है. हिंदी साहित्य में इनका एक ख़ास मुक़ाम है. भोला इतना कि अपने घर को किराये का घर कहता है.

"नहीं घर है मेरा, किराये का घर है."
और
"और ज़िंदा रहने के लिए
मुखौटा पहन लिया हूं."

नहीं भोला पंडित, जिसे आप मुखौटा समझ बैठे हैं, वह आपका अपना चेहरा है - साफ़गोई का, सच्चाई का, ईमानदारी का. भ्रम मत पालिए. आप मुखौटा नहीं, मुकुट धारण किये हुए हैं.

बुढ़ापे को ठेंगा दिखाते हुए यह शख़्स सृजनरत है. साहस नाम है इस साहित्यकार का. ऐसे औघड़ साहित्यकार को पाठकों के सामने लेकर "कथाबिंब" के संपादक डॉ. अरविंद ने इस जनपद का मान बढ़ाया है. आभार !

✣ **भोला नाथ आलोक**
नया सिपाही टोला, पूर्णियां, (बिहार) - ८५४ ३०१

"कथाबिंब" का जुलाई-दिसंबर अंक मिला था. कई उलझनों के कारण विलंब से लिख रहा हूं. सबसे अधिक मूल्यवान चीज़ भोला पंडित 'प्रणयी' की आत्मकथा है. स्वनिर्मित जीवन जीने वाले इस लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार ने जिस तरह अपनी प्रकृति-प्रदत्त कला-क्षमता को सर्वथा विपरीत परिस्थितियों से लड़कर विकसित किया है, वह अत्यंत रोमांचक और प्रेरणाप्रद है सबके लिए. सच है - कर्मवीर का राम पार करते हैं बेड़ा.

सलीम अख़्तर की कथा शिल्प और कथन दोनों प्रकार से मंजी हुई होने के साथ ही नारी जगत को नया दृष्टिबोध प्रदान करती है - नयी दिशा की ओर प्रेरित करती है. जय नारायण की कहानी - 'आज की पांचाली' तत्कालीन बिहार सरकार और सर्वाधिकार मुख्य मंत्री को साफ़ बेनकाब करती हुई उन्हीं की माटी की एक बेसहारा निर्धन औरत की पीड़ा का और असहनीय टीस को प्रतीकात्मक ढंग से मिलाकर निर्भीकता पूर्वक उद्घाटित करने में सफल हो गयी है. परंतु कहानी को अधिक लंबी होने से बचाया जा सकता था. एक ही क्षेत्रीय शब्द 'डहकना' का अनेक बार प्रयोग पाठकों को अखरता है. यह शाब्दिक दरिद्रता भी सूचित करता है. देवेंद्र सिंह तो मानवीय और विशेष कर ग्राम्य संवेदनाओं के सफल चितेरे रहे हैं.

✣ **अमोघ नारायण झा**
अभय प्रकाशन, रानीगंज, मेरीगंज,
जिला - अररिया (बिहार) - ८५४३३४

"कथाबिंब" का जुलाई-दिसंबर ०५ का संयुक्तांक मिला. कहानियों का चयन आपने बहुत सतर्कता से किया है तभी तो 'औरत कोई सराय नहीं' सलीम अख़्तर तथा भगीरथ शुक्ल की कहानी 'और बांध टूट गया' जैसी बहुत अच्छी कहानियां आ सकी हैं.

भोला पंडित 'प्रणयी' का आत्मकथ्य अनुकरणीय है. डॉ. सतीश दुबे का कथन आज की साहित्यिक गतिविधियों की वास्तविकता है.

हसन जमाल का पत्र पढ़ने से लगता है कि वे गुजरात की चर्चा बराबर करते रहेंगे ताकि लोग इसे याद करते रहें और भूलने न पायें. वह गोधरा के बारे में कुछ नहीं बोलते. अफ़गानिस्तान की चिंता करते हैं, किंतु ११ सितंबर को अमरीका के ट्रेड संटर पर आतंकी हमले के फलस्वरूप कई हज़ार निर्दोषों की हत्या और खरबों की संपत्ति नष्ट कर देने वालों के ख़िलाफ़ एक शब्द नहीं बोलते. अफ़गानिस्तान में भगवान बुद्ध की मूर्तियों को डायनामाइट से उड़ा दिया गया. तब वे कुछ नहीं बोलते. यदि अफ़गानिस्तान ने ओसामा बिन लादेन को प्रश्रय न दिया होता तो शायद यह न होता. यह भारत ही है कि जहां के जहाज़ अपहरण करके आतंकवादी छुड़ाये जा सकते हैं, और कंधार से आतंकवादी सरकारी सुरक्षा में ग़ायब हो जाते हैं. पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान दोनों अपने देश में उनके होने से इनकार कर देते हैं. भारत ऐसे अविश्वसनीय बहानों को मान सकता है किंतु अमरीका तो इन तर्कहीन बहानों को नहीं मान सकता.

काग़ज़ी लिखा-पढ़ी में भारत धर्म-निरपेक्ष देश है. किंतु यहां की सरकारें सांप्रदायिक आधार पर ही कार्य करती हैं. अल्पसंख्यक संप्रदाय को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करना तथा बहुसंख्यकों की उपेक्षा करना उनका काम है.

गोधरा तथा गुजरात के दोषियों को सजा देने की कार्यवाही चल रही है किंतु कश्मीर में बेगुनाह रोज़ मारे जाने वाले हिंदुओं के बारे में किसी को चिंता नहीं है. हसन जमाल को भी नहीं.

✣ **नरसिंह नारायण**
बैंक कॉलोनी, लोहरामऊ रोड, ओमनगर, सुलतानपुर - २२८००१

(कुछ और प्रतिक्रियाओं के लिए पृष्ठ-४६ देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

इस अंक के साथ 'कथाबिंब' ने २७वें वर्ष में प्रवेश किया है. इसी के साथ लगभग ४१ वर्ष की भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (मुंबई) की नौकरी से, मार्च में, मेरी सेवा-निवृत्ति भी हुई है. यह समीचीन होगा की उम्र की इस दहलीज़ पर पहुंच कर तमाम चीजों का लेखा-जोखा कर लिया जाये - यह पता किया जाये कि क्या खोया, क्या पाया. 'कथाबिंब' की शुरुआत प्रौढ़ावस्था में की थी और अब जब वह प्रौढ़ हुई है तो स्वयं वृद्धावस्था में क़दम रख चुका हूं.

होता यह है कि जब आप एक साथ कई क्षेत्रों में बहुत कुछ करना चाहते हैं तो कई समांतर स्तरों पर, हर क्षण आपको युद्ध के लिए तैनात रहना होता है. घर-परिवार की ज़िम्मेदारी, सक्रिय वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता, लघु-पत्रिका ही सही लेकिन राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका का संपादन - हर स्तर पर आपको पल-छिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है. फिर धीरे-धीरे यह सब आपकी आदत में शुमार हो जाता है. इसी प्रतिबद्धता के चलते किसी भी प्रकार के उतार-चढ़ाव आपको छू नहीं जाते, जल में मछली की तरह.

वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता के रूप में देश-विदेश की अनेक वैज्ञानिक संगोष्ठियों में भाग लिया और अनेक विदेशी यात्राएं भी कीं - सिंगापुर, कनाडा, हॉन्गकॉन्ग और अमरीका तो कई बार जाना हुआ. अनेक शहरों को देखा, तरह-तरह के लोगों को जाना. बहुत से अनुभवों का एक 'जख़ीरा' ज़मा हो गया है. कैसे, कब यह शब्दों की शक़्ल लेगा कहना मुश्किल है.

'कथाबिंब' का हर अंक आज भी एक चुनौती सरीखा है. अगर गणना की जाये तो अब तक सौ से अधिक अंक तो प्रकाशित हो ही चुके होंगे ! 'आमने-सामने' और 'सागर-सीपी' स्तंभों में अनेक रचनाकारों के आत्मकथ्य और साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं. 'आमने- सामने' में सबसे पहले भाई मिथिलेश्वर का आत्मकथ्य छपा था. किसी भी पत्रिका में आत्मकथ्यों की इतनी लंबी श्रृंखला प्रकाशित नहीं हुई है. यह एक कीर्तिमान है. इन सभी आलेखों को पुस्तकाकार रूप देने की योजना है. - योजनाएं तो बहुत हैं, पर स्व. नेहरू के शब्दों में - 'समय कम है, लेकिन अभी मीलों चलना है !'

●

अब इस अंक की कहानियों की बानगी - अपने लेखन के माध्यम से भाई तारिक अस्लम 'तस्नीम' एक सेतु की तरह मुसलमानों और हिंदुओं के बीच पैदा हो गयी खाई को पाटने का काम कर रहे हैं. उनकी कहानी 'जेहाद' भी जेहाद को लेकर उत्पन्न दुर्भावनाओं को दूर करने की एक कोशिश है. अंक की दूसरी कहानी 'रूदन' (अमित जांगड़ा) एक सर्वथा नये लेखक की कहानी है. दादी अभीत को बहुत चाहती हैं - किंतु मृत्यु से पूर्व वे उसे नहीं देख पातीं. जब तक अभीत घर आता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है ! अगली कहानी 'चैटिंग' (कुंवर आमोद) कंप्यूटर के माध्यम से 'संबंध' बनाने की कहानी है, फिर चाहे उस संबंध की परिणिति कुछ भी क्यों न हो ! पूर्ण शर्मा 'पूरण' ने 'एक स्वप्न का अंत' के माध्यम से आज के विषाक्त होते माहौल की एक तस्वीर पेश की है कि वर्तमान परिस्थितियां कितनी भयावह हैं. इन्हीं परिस्थितियों की दूसरी तस्वीर महावीर रवांल्टा अपनी कहानी 'भंडारी उदास क्यों थे ?' में प्रस्तुत करते हैं. भंडारी की सारी उम्र मेहनत करके बच्चों को काबिल बनने में गुज़र गयी. बच्चे अब अच्छी नौकरियों में स्थापित हैं लेकिन उनके साथ नहीं हैं, कमोबेश सभी का हश्र ऐसा ही होना है, तो उसमें उदास होने की क्या बात ?

●

पिछले तीन महीनों में राजनीतिक घटनाक्रम में बहुत कुछ ऐसा घटा है जिस पर टिप्पणी करना आवश्यक है. किंतु सारे कुछ को समेटना शायद संभव न हो. अयोध्या हो, चाहे वाराणसी हो या दिल्ली, मुंबई, कोलकाता या फिर जम्मू या श्रीनगर, वर्तमान में, देश का आम नागरिक कहीं भी सुरक्षित नहीं है. बिहार, झारखंड, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र - आतंकवाद के दूसरे पहलू माओवाद-नक्सलवाद से ग्रस्त हैं तो कुछ अन्य प्रांत उग्रवाद से त्रस्त हैं. इधर चोरी-डकैती, हत्याएं, बलात्कार जैसी अपराधिक घटनाओं में भी बहुत अधिक इज़ाफा हुआ है. पूरे देश में, सब ओर निरंकुशता का राज्य है. अपनी इच्छा और अपनी योजनानुसार आतंकवादी पूरे देश में, कहीं भी हमला कर सकते हैं, क़हर बरपा सकते हैं. बाद में आप कितनी भी नाकेबंदियां करते रहिए. कई बार तो जब तक कोई गुट ज़िम्मेदारी नहीं लेता तो यह भी मालूम नहीं पड़ता कि हादसे में किस आतंकवादी संघठन का हाथ था. जैसे कि नहीं पूरा देश एक 'सॉफ्ट टारगेट' में बदल गया है. आतंकवादियों को निकल भागने के सारे रास्ते ज्ञात हैं और उन्हें यह भी मालूम है कि अगर पकड़ भी गये तो भी इस देश में, फैसला और सज़ा होने में सालों-साल लगते हैं. तब तक शायद उन्हें छुड़ा भी लिया जाये ! भारत और पाकिस्तान के मध्य आपसी भरोसा बढ़ाने के लिए किये गये तमाम प्रयासों के बावजूद आज भी घुसपैठ जारी है. अमरीका को दिखाने के लिए 'लश्करे तायबा', 'सिमी' या ऐसे ही संघठनों पर प्रतिबंध लगाया गया है पर ये सभी संगठन पूरी तरह सक्रिय हैं.

हमारे प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के बोलने को कोई गंभीरता से नहीं लेता. सरकार का हर मंत्री 'अपनी ढफली पर अपना राग' गा रहा है - अर्जुन सिंह ने संविधान की दुहाई देते हुए मेडिकल, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट कोर्सेज के प्रवेश में अन्य पिछड़े वर्गों के छात्रों के आरक्षण का मुद्दा उछाला हुआ है. पिछली सरकार जब आई आई एम की फीस कम करना चाहती थी ताकि ये संस्थाएं

(कृपया शेष भाग पृष्ठ-४९ पर देखें)

कहानी

जेहाद

हिमगिरि एक्सप्रेस पूरी गति से पटरियों पर दौड़ रही थी. बस, यों प्रतीत होता, ट्रेन अब जम्मूतवी पहुंचने वाली है. यह ट्रेन चक्की बैंक पहुंची तो दिन के बारह बज चुके थे और खिड़कियों से आती धूप तीखी लगने लगी थी. यात्रियों में बेचैनी बढ़ रही थी. यदि ट्रेन यों ही लेट होती गयी तो वे न जाने कब जम्मूतवी पहुंचेंगे और उनकी आगे की यात्रा का क्या होगा ! यह मेरे अलावा कई और यात्री भी सोच रहे थे. कुछ लोग इसी मुद्दे पर बातचीत करते हुए समय काटने के प्रयास में जुटे थे. "उफ़्फ़ ! सितंबर में इतनी गर्मी ? यह भी इतनी ऊंचाई पर ? ऐसी गर्मी तो बिहार में पड़ती है."

"जी. आप ठीक कह रहे हैं. इधर भी काफ़ी अर्से से बारिश नहीं हुई. देख नहीं रहे, नदियां एकदम सूखी हैं ? एक बूंद पानी कहीं दिखाई नहीं दे रहा है ? लेकिन, सूखी नदियों में पत्थर कितने सुंदर-सुंदर दिख रहे हैं, जैसे किसी ने तराश कर रख दिये हैं. इन पत्थरों के ऊपर से बहता हुआ पानी कितना आकर्षक लगता होगा ?"

वह व्यक्ति मेरे लिए बिल्कुल अपरिचित था, जिसने बातचीत शुरू की थी और इसी दौरान बताया था कि वह आर्मी में है. यह सोचकर मैं चुप सा हो गया.

मैं लगातार बाहर की ओर देख रहा था. ट्रेन दो पहाड़ियों के बीच से निकल रही थी. मैं सोचने लगा कि यदि ये पत्थर लुढ़ककर पटरियों पर आ जायें तो फिर क्या होगा ? यहां बचाव और राहत कार्य कैसे अंजाम दिया जा सकेगा ? मेरी आंखें एक और दृश्य को देखकर चौंक गयीं. रेलवे पटरियों की एक ओर कुछ दूरी पर पुलिस ने कैंप लगा रखा था, जिनमें पुलिस के जवान मौजूद थे. उनके पास बंदूकें थीं. वे काफ़ी चौकन्ने दिखाई दिये. मुझ से चुप नहीं रहा गया, "ये कैंप रेल पटरियों की हिफ़ाज़त के लिए लगाये गये हैं ? या कोई अन्य कारण भी है ?"

उसने मिनरल वाटर की बोतल को होठें से लगाया, जिसका पानी गर्म हो चुका था, पर जिसे पीने के सिवा कोई दूसरा उपाय शेष नहीं था. उसने मेरे प्रश्न के प्रतिउत्तर स्वरूप कहा, "वो सामने जो घाटी दिख रही है न ? उसके पार से ही आतंकवादियों का आना-जाना होता है, इसलिए यह व्यवस्था की गयी है. फिर भी वे कहां मानते हैं. इधर आकर वारदातें कर जाते हैं, "क्या इसे रोका नहीं जा सकता ?" उसने मेरे इस प्रश्न पर नाक सिकोड़ी. उसका चेहरा अनपेक्षित रूप से विकृत हो उठा. वह मेरी ओर देखते हुए बोला, "सब कुछ हो सकता है ? आतंकवाद को रोका जा सकता है. मगर भाई कांटों की बाड़ लगाकर नहीं, तराई में यह संभव ही नहीं है, जिसमें घाटियों के रास्ते इधर से उधर आते-जाते हैं लोग. वे कभी मार गिराये जाते हैं या फिर फरार हो जाते हैं. हमारी सेना में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो उनकी मदद करते हैं....." यह कहते हुए वह बेहद दुःखी लगा.

"जो जहां है. उसे उस परिवेश की तमाम सच्चाइयों का ज्ञान है किंतु वह चुप है तो महज़ इसलिए कि वह उस विभाग की रोटी खा रहा है, जहां वह नौकरी करता है. उसे विभागीय गोपनीयता भंग करने का अधिकार नहीं है.....नहीं तो एक झटके में नौकरी गयी समझो."

डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'

कुछ ऐसे ही विचारों में उलझ गया मस्तिष्क. मेरी दृष्टि अब भी वादियों में भटक रही थी. कितनी शांति थी चारों तरफ़ .....पर ऐसी शांति और सन्नाटे का क्या मतलब ? जहां कब गोलियां बरसने लगें और सड़कों..... मुहल्लों में इतनी लाशें बिछ जायें, जैसे कोई शिकारी गुज़रा हो यहां से. किंतु ये कैसे शिकारी थे जो अपनों का ही शिकार करते फिर रहे थे. उन्हें जानवरों और परिंदों की कोई आवश्यकता नहीं थी ?

"आप कुछ सोच रहे हैं ? एक बात बताऊं आपको. यह आतंकवादियों या इस्लामी जेहादियों की जो बातें अख़बारी सुर्खियों में देखते-पढ़ते हैं न आप ? यह समस्या सामाजिक कम राजनीतिक अधिक है."

"आपके विचारों से मैं पूर्णतया सहमत हूं. हम लोग यह भी देख रहें हैं कि इसका ख़ामियाज़ा आम आदमी को ही भुगतना पड़ रहा है जो इसके लिए क़तई ज़िम्मेदार नहीं है और न ही उसे इससे मतलब है कि यह ज़मीन जिस पर उसकी बस्तियां आबाद हैं, यह किसके क़ब्ज़े में है ? वह चाहे इधर का नागरिक हो या उधर का. वह तो बस सुख, शांति और सुरक्षा के साथ जीवन यापन करना चाहता है." मेरे इस कथन पर वह व्यक्ति तनिक मुस्काया.

"भाई यही तो सबसे बड़ी समस्या है ? आम आदमी को सुख-चैन से नहीं जीने देना है ? यदि ऐसा हो गया तो उनकी राजनीति की रोटियां किसके तवे पर सेंकी जायेंगी."

तारिक असलम 'तस्लीम'

३ अप्रैल १९६२, धनगाई, (विक्रमगंज, रोहतास)

लेखन : *सन १९७५ में पहली बाल कहानी मासिक 'बालक' में प्रकाशित. अब तक देश की विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.*

प्रसारण : *आकाशवाणी पटना से १९७५-१९८५ तक उर्दू हिंदी कार्यक्रमों में कहानियों का नियमित प्रसारण.*

प्रकाशन : *'आदमीनामा' : बिहार के लघुकथाकारों का प्रथम संकलन-१९८५, 'सिर उठते तिनके' (लघुकथा संग्रह), 'शब्द इतिहास नहीं रचते' (काव्य संग्रह), 'पत्थर हुए लोग' (कहानी संग्रह) शीघ्र प्रकाश्य, 'प्रतिनिधि लघुकथाएं' (लघुकथा-संकलन) शीघ्र प्रकाश्य.*

अनुवाद : *पंजाबी, मगही, भोजपुरी, बंगला, गुजराती, मराठी में रचनाएं अनूदित.*

सम्मान : *अखिल भारतीय लघुकथा मंच सम्मान (पटना-१९९६), दुष्यंत कुमार स्मृति सम्मान (गाज़ियाबाद-२०००), परमेश्वर गोयल साहित्य सम्मान (बरेली-२०००), मोहसिन काकोरवी स्मृति सम्मान (इटावा-२०००), पांडुलिपि प्रकाशन अनुदान, राजभाषा विभाग, बिहार सरकार द्वारा वर्ष २००१-२००२ में प्रदत्त.*

विशेष : *लेखनी प्रकाशन, भारतीय साहित्य सृजन संस्थान, संजीवनी हेल्थ केयर क्लीनिक की स्थापना.*

संप्रति : *अनुवादक/राजभाषा विभाग, बिहार सरकार.*

अचानक कुछ लोगों ने अपना बोरिया-बिस्तर समेटना शुरू कर दिया. मैंने उस व्यक्ति की ओर देखा. "बस. पंद्रह-बीस मिनट और....फिर हम लोग जम्मू स्टेशन पर होंगे." यह कहते हुए उसने अपने सामानों को सीट पर इकट्ठा करना शुरू कर दिया. मैंने उसकी ओर देखा वह बेख़ौफ़ कुछ एक सामानों को पीठ पर बांध चुका था और बाक़ी हाथ से खींचकर गेट पर ले जाने की सोच रहा था. "चलिए. आप भी तैयार हो जाइए ? बस ट्रेन जम्मू पहुंचने वाली है.

"जी अच्छा."

मैं देख रहा था की वैष्णोदेवी जानेवाले यात्री काफ़ी उत्साहित थे. उनको जल्दी थी कि कैसे ट्रेन रुके और वे कूदकर निकलें. चेहरे सबके थके थे किंतु उन लोगों के चेहरों पर कोई भय नहीं था कि वे एक ऐसे शहर में क़दम रखने जा रहे हैं, जहां न जाने कब कहां बम विस्फोट हो जाये. सच ! ख़ौफ़ के पर नहीं होते. उसकी न कोई शक्ल होती है. यदि कुछ होता है तो एक मुखौटा. जिसके पीछे भी मनुष्य ही होते हैं. ट्रेन से उतरने के बाद, मैंने राहत की सांस ली थी. अल्लाह का शुक्रिया अदा किया था कि पटना से जम्मू तक की यात्रा सकुशल पूरी हो चुकी थी. मैं प्रसन्न था कि उस आर्मी वाले को कुछ नहीं बताया था कि मैं जम्मू क्या करने जा रहा हूं ? उसने ही अनुमान के आधार पर कहा था, "आप श्रीनगर तक जायेंगे न, घूमने के लिए ?" "जी सर ! आपने ठीक समझा." बस इतना ही कह सका था.

जम्मू स्टेशन से बाहर निकलने पर श्री व्हीलर से लेकर मिनी बस तक की सेवाएं उपलब्ध थीं. वहां एक बस में आठ दस यात्रियों के सवार होते ही गाड़ियां चल पड़तीं, जबकि बिहार में सीटें भरने के बाद बोरे के माफ़िक़ यात्रियों को कोंच नहीं लेते तब तक बसें हिलने का नाम नही लेतीं. कुछ मिनटों के बाद ही मैं परेड ग्राउंड के सामने खड़ा था, जिसकी बायीं ओर सम्मेलन भवन दिख रहा था. वास्तव में, यह स्थान परेड चौराहे के बिल्कुल समीप था. जहां से एक सड़क हास्पिटल, एक रघुनाथ मंदिर, एक सड़क मेन मार्केट और एक सचिवालय की ओर जाती थी.

मेरे जम्मू आने का उद्देश्य एक प्रेस सम्मेलन में भाग लेना था. एक हॉलनुमा कमरे में अनेक पंखों से सुसज्जित बिस्तरों की व्यवस्था की गयी थी. मैंने एक बिस्तर के आगे अपने सामान को रखा, तो पास के बिस्तर पर बैठे एक बुजुर्ग, गौर वर्ण, लंबे क़द के रौबीले व्यक्ति ने प्रश्न किया. आप कहां से आये हैं ? आपका परिचय जानना चाहूंगा ?

मैंने उनको अपना परिचय दिया. वह स्वयं के बारे में बताने लगे, "मैं कानपुर से आया हूं. ब्रजभूषण तिवारी नाम है. उच्च विद्यालय में शिक्षक था. प्रधानाचार्य पद से अवकाश लिया है...ऐसे आयोजनों में युवाओं से मिलकर प्रसन्नता होती है. आप लोग बहुत काम कर रहे हैं. आप इतनी दूर से यहां आ गये. जम्मू में अनेक तीर्थस्थल हैं, भगवान रघुनाथ जी का मंदिर तो दर्शनीय है ? आप तो नहीं जायेंगे वहां ?"

"मैं तो वाराणसी विश्वविद्यालय के भगवान मंदिर में पूजा कर आया हूं ? आप मेरी बात पर विश्वास कर पायेंगे ? मेरी सोच है कि हम एक दूसरे के धार्मिक स्थलों पर जायेंगे तो अपने धर्म के प्रति हमारी आस्था और सुदृढ़ होगी. क्यों ?"

"आश्चर्य....आपने मुसलमान होते हुए ऐसा किया ?"

"जी ! मैंने किया और वह भी एक अग्नि परीक्षा थी. जब मैं वाराणसी विश्वविद्यालय के हॉस्टल में ठहरा था. एक परीक्षा का केंद्र पड़ा था वहां. जिस मित्र के साथ ठहरा था. वह मेरे सीनियर

के क्लास फेलो थे. हम दोनों शाम को टहलते हुए वहां पहुंचे तो वहां कॉलेज कैंटीन जैसा माहौल था. कमलेश ने मुझसे कहा, "मेरे यहां आने का एक और उद्देश्य भी है. मैं यहां प्रतिदिन पूजा अर्चना करने आता हूं. क्या आप भी पूजा करना चाहेंगे ? आपका धर्म तो हमारे भगवानों को नहीं स्वीकार करता ?"

"यह विचार उनके लिए रहने दीजिए, जो ऐसा कहते हैं. मैं आपके साथ ही मंदिर चलूंगा और आप जो भी करेंगे, मैं वैसे ही करूंगा....."

"ओह ! मैं कल्पना नहीं कर सकता. इस देश में आप जैसे मुसलमान भी रहते हैं. और इतने उदार दृष्टिकोण के परिचायक हो सकते हैं."

मुझे कहना पड़ा, "दरअसल, आप जिनको मुसलमान कहते या फिर समझते हैं वे जाहिल लोग हैं जो टोपी, दाढ़ी, सुन्नत और गौ मांस सेवन को मुसलमान होने की निशानी मानते हैं. पढ़े लिखे मुसलमानों से गर मिलेंगे तो आपकी धारणा बदल जायेगी."

फिर हमने भोर होते ही रघुनाथ मंदिर जाने का कार्यक्रम तय किया.

आदतन, मैं तिवारी जी से पहले जग गया. घड़ी पर नज़र गयी तो साढ़े चार बजे थे. उसी समय मैंने बिना कोई शोर-शराबे के मुंह-हाथ धोकर स्नान किया. अपने बिस्तर पर आया तो तिवारी जी भी जग चुके थे, उन्होंने मुझे देखा तो कुछ सशंकित भाव से पुनः पूछा, "पक्का, आप मंदिर चलेंगे ?"

"जी, मैं चलने को तैयार हूं." मेरे इस कथन पर वह तनिक लज्जा के साथ बोले, "मुझे उठने में देर हो गयी. मैं अभी मुंह धोकर आया. स्नान मंदिर से आने के बाद करूंगा." और वह कमरे से निकल गये.

जब हम सड़क पर आये. एक-दो व्यक्ति इधर-उधर आ जा रहे थे. हमारे पास काफ़ी समय था इसलिए, एक चक्करदार मोड़ पार करते हुए मंदिर जाने की योजना बनी, ताकि हमारी सुबह की सैर भी पूरी हो जाये. हम परेड के ढलान से नीचे की ओर उतर रहे थे. अचानक मेरी दृष्टि एक स्कूटी पर ठिठक गयी. उस पर मात्र एक किशोरी सवार थी. वही स्वयं स्कूटी ड्राइव कर रही थी और पूरी गति से हमारी ओर देखते हुए निकल गयी.

"आश्चर्य. जहां चप्पे-चप्पे पर ख़ौफ़ और दहशत पसरी हो, वहां कितने निर्भय होकर लोग रहते हैं कि हम कल्पना नहीं कर सकते. फिर कुछ लोग केवल हाफ़ पैंट और टी शर्ट में टहलते हुए दिखे. तिवारी जी किसी भजन की पंक्तियां भर रास्ते गुनगुनाते रहे. मंदिर रोड की सारी दुकानें बंद थी. अलबत्ता, मंदिर के मुहाने पर एक चाय की दुकान खुली थी. वहां दो-तीन लोग बैठे चाय-बिस्कुट सेवन कर रहे थे. वे भी बेफिक्र दिख रहे थे, जबकि रघुनाथ मंदिर के मुख्यद्वार को बंद करके बैरीकैड बना दिया गया था. अर्द्ध सैनिक बल आधुनिक हथियारों से लैस चाक़चौबंद थे. उन सबकी ओर देखते हुए हम एक छोटे से संकीर्ण रास्ते के समीप पहुंचे तो एक सैनिक ने हाथ ऊपर उठाने का इशारा किया.

"क्या मैं आतंकवादी दिखता हूं ?"

"नहीं सर जी. ऐसी बात नहीं है. कुछ लोगों के कारण ही यह करना पड़ता है. हम तो स्वयं तंग आ गये हैं."

हमारी अच्छी तरह जांच पड़ताल करने के बाद उसने एक ओर बढ़ने का संकेत किया. फिर मेटल डिटेक्टर से गुज़रते हुए अंदर पहुंचे तो अभी भगवान के पट नहीं खुले थे.

कुछ देर तक हम मंदिर परिसर के चारों ओर चक्कर काटते रहे. परिसर में अनेक सैनिकों ने मोर्चे बना रखे थे और अपने सामने के बरामदे की सीढ़ियों पर किसी को नहीं बैठने देना चाहते थे. यह देखकर ही तिवारी जी बोले, "जिस भगवान ने मनुष्य को जन्म दिया. उसी भगवान की रक्षा सैनिकों को करनी पड़ रही है."

"तिवारी जी ! भगवान अपने मंदिर-मस्जिद की रक्षा स्वयं कर सकता है, बशर्ते हमारा विश्वास अडिग हो. ये जो स्वयं को आतंकवादी के मुखौटे से पहचान बनाये रखना चाहते हैं ये ग़रीबी, भुखमरी, बेकारी और कुछ सामाजिक कारणों से हथियार उठाये फिर रहे हैं. यह काम उनके लिए रोज़गार है. और इस रोज़गार को अपनाने के लिए हम और आप नहीं, बल्कि देश की राजनीतिक पार्टियां उत्तरदायी हैं जो उनको इस मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं."

मेरी ओर देखकर तिवारी जी मुस्कुराये किंतु कुछ कहा नहीं, सिवाये इसके, "चलिए, भगवान के दर्शन कर आयें."

उस स्थान पर तीन अधेड़ उम्र की महिलाएं पालथी मारकर बैठी भजन-कीर्तन में तल्लीन थीं. एकाएक मंदिर के बायें भाग से एक पंडित जी भी आ गये और वहीं बैठकर माला जपने लगे. समय अब भी शेष था चूंकि हमें यह मालूम नहीं था कि भगवान के दर्शन किस समय से कराये जाते हैं. हमारी मुखमुद्रा और कुछ बातचीत के आधार पर एक महिला बोली, "बस पांच मिनट और ! भगवान के पट छह बजे खुल जायेंगे, आरती होगी...." वह अभी और कुछ बताने वाली थी कि अचानक परिसर में वाद्ययंत्रों का स्वर गुंजायमान हो उठा.... अनेकानेक घंटियां बज उठीं..... फिर भगवान के सामने टंगे पर्दे को हटाया गया. सभी दर्शनार्थी सामने खड़े हो गये. भक्ति भाव से सबके सिर झुक गये. पंडित जी आरती की क्रिया पूरी कर चुके. सबको प्रसाद के साथ माथे पर टीका लगाने लगे. तिवारी जी ने पूछना आवश्यक समझा, "मैंने अभी स्नान नहीं किया है...."

यह सुनकर पंडित जी मुस्कुराये, "आप कृपया बाद में आयेंगे." अब वह अपना हाथ माथे की ओर बढ़ा चुके थे. मैं तटस्थ भाव से खड़ा रहा. उन्होंने बड़े ही प्रेम एवं श्रद्धा से माथे पर टीका लगाया. मैं सोच रहा था. मेरे माथे पर टीका एक मनुष्य होने

के नाते ही न लगाया न कि एक मुसलमान ? किसी मनुष्य के चेहरे पर उसकी जाति नहीं लिखी होती, फिर क्यों हम एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो जाते हैं ? क्यों गले पर रखकर छुरियां रखकर जश्न मनाते हैं. कूड़े-कचरे की माफ़िक मनुष्य को आग में झोंक देते हैं ? मंदिरों में मुसलमानों की पहुंच नगण्य होती है किंतु पीर, फ़कीर की मज़ारों पर हज़ारों हिंदू गुरूवार एवं शुक्रवार को सज्दे करने जाते हैं. तब क्या मुल्लाओं को यह पता होता है कि यहां मिन्नतें मांगने वाला कोई मुसलमान नहीं, बल्कि एक हिंदू है ? हम इस विचारधारा को क्यों नहीं अपना पा रहे हैं ?

मंदिर परिसर से बाहर आते हुए मेरे मन-मस्तिष्क में ऐसे प्रश्नों ने सुनामी लहर सी उथलपुथल मचा रखी थी. तिवारी भी चुपचाप साथ चल रहे थे. वह मेरी ओर तकते हुए कहने लगे, "बड़ी भूल हो गयी जो बिना स्नान किये भगवान के दर्शन करने चला आया."

"जाने दीजिए. संध्या समय फिर आ जायेंगे.....

'हां. यह ठीक रहेगा." वह संतुष्ट दिखने लगे.

अब भी रघुनाथ मंदिर रोड में सारी दुकानें बंद थीं. इधर-उधर से एक आध लोग आते-जाते दिख रहे थे. जम्मू मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल के समीप पहुंचकर चाय वाले पर दृष्टि पड़ी. हमारे पैर ठिठक गये. यहां काफ़ी भीड़ थी. हम एक ओर खड़े हो गये. उसने दो गिलास चाय बढ़ा दी. दस का नोट देने पर उसने पूरे छह रुपये काटे किंतु उसकी चाय की मात्रा देखकर कहना पड़ा, "बिहार में एक गिलास की चाय छह रुपये में पड़ेगी और ऐसी लज़ीज़ भी नहीं होगी."

"हां. चाय तो अच्छी पिलायी." फिर आगे बढ़ते हुए वह कहने लगे, "आप बुरा न माने तो कहना चाहूंगा कि बिहार अपने गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने में सफल नहीं दिख रहा है. वहां का राजनीतिक परिदृश्य विचित्रताओं से भरा है. जो जहां है, वह लूटखसोट में व्यस्त है. समाचारों को पढ़ते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि राजधानी पर अपराधियों ने क़ब्ज़ा कर लिया है, जैसे ग़ाज़ा पट्टी पर यहूदियों की मनमानी देखने को मिल रही है. कुछ वैसी ही स्थिति बिहार की लगती है."

"आपके विचारों को असंगत नहीं कहूंगा, चूंकि आप से अधिक अनुभव रखता हूं. मैं. विकास के मामले में बिहार राशि भले व्यय नहीं कर पाता किंतु अपहरण उद्योग से करोड़ों की कमाई में प्रत्येक राज्य से आगे है. यह धंधा यहां ख़ूब फलफूल रहा है."

"अच्छा. चलिए. अब थोड़ी देर आराम कर लें, फिर सम्मेलन में भाग लेने भी चलना है. देखें, वहां किस मुद्दे पर अधिक चर्चा होती है...." तिवारी जी बोले.

अभी हम अपने बिस्तरों पर बैठे ही थे कि एक परिचित पत्रकार जो जलगांव से आये थे वे अख़बार की सुर्खियां पढ़कर सुना रहे थे, जिसका लबोलुबाब यही था कि कल दोपहर जम्मू बस स्टैंड से इधर चले आने के कुछ मिनटों बाद ही आतंकवादियों ने ग्रेनेड बम फेंका था, जो किसी कारणवश फट नहीं सका, यदि वह फट गया होता तो निश्चित एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो चुकी होती क्योंकि बस अड्डे के पास ही पेट्रोल पंप भी था और उसी को निशाना बना कर सड़क के ऊपरी पुल की सीढ़ियों से नीचे की ओर बम पटका गया था.

इस ख़बर पर एक व्यक्ति ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "आप इनको आतंकवादी क्यों जेहादी कहिए.... इस्लाम धर्म में जेहादियों के शहीद होने पर सीधे स्वर्ग में प्रवेश मिलता है, फिर ये क्यों नहीं बमों के धमाके करेंगे ?" मैंने उनकी ओर देखा. उनकी आयु पैंसठ-सत्तर के आसपास होगी. छोटे क़द के साफ़ सुथरे चेहरे मोहरे के व्यक्ति थे. मुसलमानों के प्रति उनके हृदय में नफ़रतों का सैलाब उमड़ते हुए साफ़तौर पर महसूस किया जा सकता था. उनकी दृष्टि में मुसलमान घृणा के पात्र थे. उनके चेहरे को देखकर यही कहा जा सकता था कि उनका बस चलता, वे सारे मुसलमानों का क़ीमा-कबाब बना डालते. उन्हें कच्चा चबा जाते. मैंने तत्काल कुछ कहना उचित नहीं समझा. तनवाणी जी ने मेरी ओर देखा. उनके चेहरे का रंग फीका पड़ गया. वह विचित्र असमंजस में दिखे. यह सब देख-सुनकर तिवारी जी मुस्कुराये.

सम्मेलन समाप्ति के बाद हमारे पास काफ़ी समय शेष था. हम शहर के कुछ विशेष स्थानों की सैर कर सकते थे. इस बार तनवाणी जी ने पकड़ लिया. उनकी क़द काठी और बोलने का अंदाज़ कुछ ऐसा था कि फिल्मों के विख्यात चरित्र नायक क़ादिर ख़ान की याद आने लगती, इसलिए, मैंने हंसते हुए कह देना ही उचित समझा, "भाई, तनवाणी जी ! मुझे आपके व्यक्तित्व में क़ादिर ख़ान की झलक मिलती है. इसलिए, आगे से मैं आपको क़ादिर भाई कहकर ही संबोधित करूं तो अन्यथा नहीं लेंगे न ?"

"अरे यार, जो दिल में आये, सो कहो. मैं किसी बात का बुरा नहीं मानता. अपना समझ रहे हो, तभी तो कुछ कहने की सोच रहे हो. अच्छा लगा मुझे जानकर यह. "तनवाणी ने स्वीकृति दी तो फिर नाम से कभी बुला भी नहीं पाया. इस मित्र मंडली में वे व्यक्ति भी साथ थे, जो सुबह मुसलमानों के ख़िलाफ़ काफ़ी ज़हर उगलते रहे थे और अपने बुद्धिजीवी होने का प्रमाण प्रस्तुत कर चुके थे. सबके सब साथ चल रहे थे कि अचानक घोटडे ने मेरा हाथ पकड़ कर पीछे खींचा. यह तनवाणी के गहरे मित्र थे और दोनों अधिकतर समय साथ रहते. उसने बताया, "स्साला. यह तनवाणी एकदम चालू चीज़ है आपको नहीं पता है यह जो दुबला-पतला सा आदमी साथ चल रहा है और सुबह अनाप-शनाप बक रहा था वह स्वतंत्रता सेनानी है और मुंबई का रहने वाला है. तनवाणी हमेशा उसी के साथ निकलता है. उसके रेल टिकट के पैसे बच जाते हैं. जिसके बदले में वह उसके खाने पीने के खर्चे उठाता है. तनवाणी भी एक नंबर का पेटू है. आपने देखा

नहीं नाश्ते की प्लेट कैसी भरी थी. यह अकेले पांच आदमियों का भोजन हड़प जायेगा...."

अब पता नहीं तनवाणी ने घोटडे की बात सुनी या नहीं किंतु हमें पीछे छूटते देखकर सड़क की एक ओर ठिठक गया. हम दोनों पास पहुंचे तो बताने लगा, यह घनश्याम जी हैं, स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ अनेक समाचारपत्रों में कार्य करने के अलावा अनेक विषयों पर शोध भी किया है....वग़ैरह...वग़ैरह.....

उन्होंने मेरी ओर देखा. अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया. "मैं डॉ. आसिफ़ रहमान, पटना से आया हूं." यह सुनते ही सोच में पड़ गये. संभवतः सुबह की बातें याद करने लगे. चूंकि तब मैं भी उनकी नज़रों से बहुत दूर नहीं बैठा था. उन्होंने एक उचटती दृष्टि डाली थी और अपनी बात कहते चले गये थे. अब उनके चेहरे पर कुछ लज्जा के भाव प्रकट दिख रहे थे. उन्होंने मेरा हाथ थाम लिया और कहने लगे, "मैंने काफ़ी समय बिहार में व्यतीत किया है.....वहां सच्चिदानंद सिन्हा पुस्तकालय, ख़ुदाबख़्श खां ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी में रिसर्च कार्य किया है. यह काम सबको बहुत पसंद आया. कई दौरे किये. उर्दू भाषा भी अच्छी तरह लिख-पढ़ सकता हूं मैं. आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई." यह अंतिम वाक्य चौंकाने वाला था, मेरे लिए.

मैं सोच में पड़ गया. यह बुद्धिजीवियों का दोग़लापन आम हिंदुओं के बीच कितनी बड़ी ग़लतफ़हमी पैदा करेगा, जो किसी मुसलमान को सामने पाकर कुछ भी कह नहीं पाते और अपनों के बीच केवल विष वमन करते रहते हैं.... रास्ते भर वह मेरी उपस्थिति और भेंट होने पर प्रसन्नता के साथ देश में मुसलमानों की उपलब्धियों को गिनाते रहे. उर्दू भाषा-संस्कृति की प्रशंसा के पुल बांधते रहे.....निश्चित रूप से यह सब सुनकर तनवाणी भी आश्चर्य में पड़ गया.

एक बार फिर हम लोग रघुनाथ मंदिर के परिसर में बाउंड्री के किनारे बैठे थे, ठीक बायीं ओर, जहां कुछ क़दमों के फ़ासले पर सैनिक चौकस खड़े पहरेदारी में जुटे थे. प्रत्येक आनेवाले पर तीखी नज़र रख रहे थे. मैंने घनश्याम जी की ओर देखकर कहा, "आप आतंकवाद के लिए किसे दोषी मानते हैं ?" मैंने अनुभव किया. वह प्रश्न सुनकर बेतरह चौंके.

"भाई. भारतीय संसद हो या अक्षरधाम मंदिर या फिर कश्मीर. प्रत्येक स्थान पर मुसलमान ही पकड़े या मारे जा रहे हैं ? यह तो पता ही होगा ?"

"जी मुझे बिल्कुल पता है ? पर क्या ये भारतीय मुसलमान हैं ?"

"नहीं इनकी संलिप्तता आंशिक है ?"

"फिर ऐसे तत्त्व तो प्रत्येक समाज और राजनैतिक दलों में भी सक्रिय हैं ? क्या उन्हें नियंत्रित नहीं किया जाना चाहिए?" क्या आप इस सच्चाई से इंकार करेंगे की पाकिस्तान प्रशिक्षित आतंकवादियों के कारनामों से भारतीय मुसलमानों की छवि ख़राब हो रही है ? लादेन का फ़लसफ़ा इस्लाम धर्म का फ़लसफ़ा नहीं है ? क्या आपको यह जानकारी है कि आतंकवादी के समूह में अनेक देशों के बेरोज़गार और दिमाग़ी फ़ितूर के शिकार कमज़ोर लोगों की भर्ती होती है जो धर्म से वास्ता नहीं रखते, बस हथियार चलाना जानते हैं. उनको यह भी होश नहीं है कि वे कौन से दुश्मनों का सफ़ाया करना चाहते हैं. क्योंकि इनकी न कोई जाति है न धर्म और आपने सुबह जिन जेहादियों की मिसाल दी थी उनके बारे में क़ुरआन में साफ़तौर पर कहा गया है कि 'और तुम अल्लाह की राह में उन लोगों से लड़ो, जो तुम से लड़ते हैं. मगर ज़्यादती न करो कि अल्लाह ज़्यादती करने वालों को पसंद नहीं करता.' और आप यह देख रहे हैं कि कुछ लोगों की ख़ुराफ़ात को इस्लामी जेहाद का नाम दिया जा रहा है जो वास्तव में जेहाद है ही नहीं. जेहाद का अर्थ है प्रत्येक ग़लत कार्य का विरोध. मगर यहां तो आप देख रहे हैं, एक मुसलमान ही दूसरे मुसलमान का धर्म के नाम पर नहीं बल्कि भारतीय मूल का निवासी होने के कारण घर उजाड़ने पर लगा है. ऐसे लोगों को ख़ुदा की जन्नत कैसे नसीब होगी ?

"मेरी बातों से आपको कष्ट हुआ. मैं क्षमा चाहूंगा." वह बोले.

"मुझे आपकी बातों से कष्ट नहीं हुआ बल्कि आपने जिस तरह ग़लतबयानी की वह कष्टदायक सिद्ध हुआ. हमारे आपके जैसे शिक्षित और तमाम वास्तविकताओं को जानने वाले लोग ही बेसिर पैर की बातें करेंगे तो मुसलमान और हिंदुओं, सबके ग़लत बयानों का विरोध कौन करेगा ? हमें ऐसी बयानबाज़ी से बचना चाहिए और सबसे बड़ी बात यह कि जिन मुसलमानों को पहले "कट्टरपंथी" कहा गया, वे ही कुछ बरसों में "आतंकवादी" कहे गये. जिनमें कुछ लोग ऐसे हैं जो किसी न किसी स्तर पर प्रशासनिक उत्पीड़न से बेहाल होकर हथियार उठाने पर विवश हुए. तब ऐसे मुसलमानों को "इस्लामिक आतंकवाद" का पेशवा कहकर प्रचारित किया गया ? यह विचार भी अमरीकी देशों के सहयोगी समूह और विशेष रूप से तेलअबीब से आयातित है. क्या आप इससे इंकार करेंगे ?"

मैं चुप हुआ. घनश्याम जी ने मेरा हाथ अपने हाथों में लिया. "हम सभी को समस्त धर्म ग्रंथों का अध्ययन करना होगा. तब ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है. आपने जो कहा, उसमें कुछ भी ग़लत नहीं है...., यह भी सही है कि इस देश के बुद्धिजीवी आम आदमी से अधिक "कंफ्यूज्ड" हैं. चलिए. वापस चलें. शाम हो चुकी है. हम सभी मेन सड़क पर आये तो जगह-जगह सैनिकों का जमावड़ा बढ़ चुका था किंतु आम आदमी निश्चिंत भाव से ख़रीदारी में व्यस्त था.

६/२, हारून नगर,
फुलवारी शरीफ़, पटना-८०१५०५.
फोन : ०६१५४-२७८४३६ व ०६१२-२२५२९७९

कहानी

रूदन

अमित जांगड़ा

मृत्युशैया !

बूढ़ी मां की मृत्युशैया.

घर के बड़े कमरे में बूढ़ी मां चारपाई पर सोयी हैं. तीन दिनों से वे ऐसे ही सो रही हैं. चारपाई के चारों ओर सब जने बैठे हैं. बेटा, बहू, बेटियां, पोती. बेटियां शादीशुदा हैं. बहू ने फोन कर बुलाया था उन्हें. 'मिलना है तो मिल लो....' सुनकर तीनों बेटियां दौड़ी आयी थीं. मां से मिलने. बूढ़ी मां की सांसें तेज़ी से चल रही हैं. हर सांस के बाद लगता है जैसे यह उनकी अंतिम सांस है. सांसें मुंह के बल शुरू हो गयी हैं.

बूढ़ी मां बीच-बीच में बड़बड़ाती हैं.

बेटियां उन्हें बार-बार बुलाती हैं - 'मां....मां.....'

मां चुप हैं. मां को कुछ सुनाई नहीं दे रहा. देता भी है तो बोल नहीं सकतीं शायद. तीनों दामाद भी आये हैं. वे तिबारी में बैठे हैं. कुर्सियां डाले. बहू बीच-बीच में आंखों से आंसू पोंछती है. बेटियों के गले भी रुंधे हुए हैं.

बूढ़ी मां की अस्पष्ट-सी बोली है. जैसे उनकी जीभ तालू से कस कर चिपकी है. वे ज़ोर लगाकर बोली हैं - 'अभी ऽ ऽ'.

बस यही आवाज़ है. यही बात है. यही बार-बार बोलती हैं वे. यही, 'अभी...' यानि अभीत. - बूढ़ी मां का पोता. बूढ़ी मां का लाड़ला.

इस आवाज़... इस शब्द के बाद बार-बार चुप्पी छा जाती है. कोई बोले तो क्या बोले !

बेटा बाहर से आया है. वह मां की खाट के पास बैठा है. वह बीच-बीच में उठ जाता है. इस बार उठकर गया तो वह दही लेकर आया है. उसको गांव के किसी सयाने आदमी ने बताया है कि दही खिलाने से मरने वाले की आत्मा को शांति मिलती है.

वह चारपाई के सिरहाने की तरफ़ हुआ है. झुककर चम्मच में दही भरा है. बड़ी बेटी ने मां के मुंह को अपने हाथ से पकड़ा है. बेटे ने दही की भरी चम्मच मां के मुंह में उड़ेली है. दही नीचे गटक लिया है. थोड़ा सा दही बूढ़ी मां की ठुड्डी को लगा है. मंझली बेटी ने अपने पल्ले से उसे पोंछ दिया है.

बूढ़ी मां की आंखें फिर खुली हैं. वे स्थिर आंखों से छत को निहार रही हैं. पलकें देर-देर से झपकाती हैं. तीन दिन पहले तो बोलती थीं, बूढ़ी मां. हंसती थीं.

तीनों बेटियां और पोती उन्हीं के पास चारपाइयां डाल सोती थीं. थोड़ी-बहुत हंसी-मसखरी होती, तो बूढ़ी मां उसमें शामिल होती थीं. जिस दिन बेटियां आयीं, बूढ़ी मां ने उनसे हंसकर कहा था- 'आ गयीं...'

छोटी बेटी पहले आ गयी थी. बड़े वाली दोनों एक जगह ब्याही हैं. छोटे वाली एक जगह. छोटी बेटी जिस दिन आयी, बूढ़ी मां बड़ी ख़ुश हुई थीं. उसने बहू से कहा था - 'यह बेटी उनसे अच्छी है...मेरे लिए बड़ी जल्दी मिलने आती है ये...' बूढ़ी मां ने छोटी बेटी का सिर भी पुचकारा था. बड़ी बेटियां आयी थीं तो बूढ़ी मां इतना राज़ी न हुई थीं. फिर भी हल्का सा औपचारिकतावश मुस्कुराई थीं.

स्थिर आंखों से छत को निहार रही हैं बूढ़ी मां. पलकें बड़ी देर-देर तक नहीं झपका रहीं.

बूढ़ी मां फिर से बोली हैं - 'अभी ऽ ऽ....'

'अभी...' यानि अभीत. बूढ़ी मां का लाड़ला. बूढ़ी मां के जिगर का टुकड़ा.

इस शब्द, इस नाम के साथ ही माहौल ग़मगीन हो जाता है. चुप्पी गहरी हो जाती है.

पांच दिन पहले तक मां-पोता साथ थे. बूढ़ी मां को बहू और पोता यानि अभीत डॉक्टर के यहां साथ लेकर गये थे. सुबह बड़ी जल्दी डॉक्टर के पास पहुंच गये थे. डॉक्टर आता तब तक तीनों जने अस्पताल के भीतर धूप की तरफ बैठ गये थे. बूढ़ी मां और पोते में ख़ूब बातें हुई थीं. एक बार बूढ़ी मां कांपने भी लगी थीं. ठंड से. कंपकंपी चढ़ी तो अभीत ने मां को और धूप में बैठने को कहा. ठंड बढ़ती ही जा रही थी. बूढ़ी मां का बदन कांपता ही जा रहा था. दांत किटकिटाने लग गये थे. भीतर जाकर कंपाउन्डर से कहा तो ऊपर से पंद्रह मिनट के बाद डॉक्टर आया था.

बूढ़ी मां और अभीत अंदर गये. बहू यानि अभीत की मम्मी बाहर ही खड़ी हो गयी थी. डॉक्टर को अभीत ने ही बताया था कि बूढ़ी मां को भूख नहीं लगती... उल्टी आती है...आदि-आदि.

डॉक्टर ने बूढ़ी मां का चेकअप किया तो उन्हें भर्ती करने को कहा. भर्ती कर लिया गया. साथ ही अभीत को फिर से डॉक्टर

ने बुलाया था - 'तुम्हारी मां की तिल्ली बढ़ने लगी है, इलाज में पैसा तो ख़र्च होगा'.

'पैसे की कोई चिंता नहीं. डॉक्टर साहब, मां को ठीक कर दीजिए.'

डॉक्टर ने एक लंबी-सी पर्ची पर दर्जनों दवाइयों और इंजेक्शनों के नाम लिख दिये थे जो बाहर जाकर ही लाने थे. उधर बूढ़ी मां और उसकी बहू बेड पर जा चुकी थीं.

दो दिन तक उसी अस्पताल में रहीं. दिन में अभीत अपने कमरे पर से खिचड़ी और गाजर-मटर की सब्जी व रोटी बनाकर लाता था. चूंकि अभीत बी. ए. सेकंड ईयर में पढ़ता था तो उसने नारनौल में ही कमरा लिया हुआ था. कॉलेज में वह तीन-चार दिनों से जा ही नहीं रहा था. उससे पहले गांव गया था. जहां से दादी यानि बूढ़ी मां के साथ अस्पताल ही आया था. वैसे भी कॉलेजों में रोज़-रोज़ जाने की ज़रूरत नहीं होती. लेकिन फिर भी अभीत गंभीरता से पढ़ता था. इसलिए वह रोज़ कॉलेज जाता था. अक्सर कम ही छुट्टी करता था.

बूढ़ी मां के पास वह खिचड़ी लेकर आया तो बूढ़ी मां बड़ी राज़ी हुई थीं. अपने दोनों हाथों से अभीत ने उनके सामने खिचड़ी का टिफिन परोसा. बूढ़ी मां ने पूछा था - 'कहां से बनाकर लाया रे ?'

'अपने आप मां......कमरे पर से....'

बूढ़ी मां के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान बिखरी थी. उन्होंने हाथों की अंगुलियों से ही आधी खिचड़ी खायी थी. कहती जा रही थीं - 'पोता मेरा लाखों में...पोता मेरा लाखों में...'

अभीत की मां ने गाजर-मटर की सब्जी और रोटी खायी. बूढ़ी मां ने भी थोड़ी-सी सब्ज़ी चखी थी.

डॉक्टर की नज़र में बूढ़ी मां की हालत ठीक हुई तो शाम के पांच बजे उन्हें छुट्टी दे दी गयी.

अभीत जो कि पढ़ने के साथ-साथ कविताएं भी लिखता है, जो अक्सर पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं. सौ के क़रीब कविताएं इकट्ठी हुईं तो उसको न जाने क्या धुन लगी कि वह अपनी कविताओं का संग्रह छपवाने के लिए उतावला हो गया था. उसने अपनी बूढ़ी मां और मम्मी को बता दिया था कि वह रोहतक शहर जायेगा अपना संग्रह छपवाने के लिए.

अस्पताल से निकलते ही अभीत ने बूढ़ी मां को फिर कहा था कि वह नांगल सिरोही तक उन्हें छोड़ आयेगा. किंतु घर नहीं जायेगा क्योंकि उसे कल मुंह अंधेरे ही रोहतक निकलना है और घर इसलिए भी नहीं जायेगा क्योंकि घर जाने से पापा शायद गुस्सा होंगे. सोचेंगे कि पढ़ता-लिखता तो है नहीं. घूमता रहता है सारा दिन. उसने मम्मी को बता दिया था कि वह पापा को रोहतक जाने के बारे में न बताये. दो-चार दिनों में लौट आयेगा वह. क़िताब के लिए बहुत भटकना है उसे.

अमितजांगड़ा

५ नवंबर १९८२, कोथल कलां, महेंद्रगढ़, हरियाणा;
एम. ए. हिंदी (फाइनल) में अध्ययनरत

लेखन : *पत्र-पत्रिकाओं में कविता, आलेख, साक्षात्कार विधाओं में प्रकाशित.*
कविता-संग्रह 'प्रतीक्षा' प्रकाशित (२००३).

विशेष : *चित्रकला में गहरी रुचि. हंस, कथाबिंब, मसि-कागद, हरिगंधा, अक्षर ख़बर, दैनिक जागरण में रेखांकन.*

संप्रति : *हरियाणा के शिक्षा विभाग में कला शिक्षक.*

तीनों नांगल सिरोही तक एक बस में बैठकर आये थे. बूढ़ी मां के साथ अभीत बैठा था. बूढ़ी मां ने अभीत को कहा था - 'जल्दी आना मेरे बेटे! कहीं भूल न जाये....'

अभीत ने कहा था - 'मां कैसी बातें करती है तू. मुझे तू याद न रहेगी. तेरे को कैसे भूलूंगा...' अभीत अपनी बूढ़ी मां को 'तू' से बुलाता है. कहता है कि 'आप' लगाने से उसे बूढ़ी मां और अपने में बड़ी दूरी महसूस होती है. इसलिए वह 'तू' ही कह लेता है. उस दिन जब शुरू-शुरू में अभीत ने बूढ़ी मां को 'आप' लगाया था तो बूढ़ी मां नाराज़ होकर बोली थी - 'तू लगाया कर मुझे...'

'क्यों.....'आप' लगाऊंगा'.

'नहीं रे ! मेरे बेटे आप तो उनके लगाते हैं जिनमें दिखावा करना होता है... मुझे तो 'तू' कहा कर बेटे...'

'नहीं.....आप...'

'नहीं रे बेटे ! भगवान को भी हम तू लगाते हैं न. किसलिए... इसलिए कि भगवान से हम प्यार करते हैं. भगवान में हम श्रद्धा रखते हैं.... तू भी मुझे 'तू' से बुलाया कर. मैं तुझे भगवान नहीं लगती बेटे...बता...तू बता आज....'

अभीत ने गर्दन हिलाकर हामी भरी तो बूढ़ी मां ने उसे सीने से चिपका लिया था. और उस दिन से अभीत की आदत हो गयी थी कि वह अपनी बूढ़ी मां को 'तू' से बुलाये.

नांगल सिरोही उतरे तो टैंपो स्टैंड के पास जाकर बैठ गये. टैंपो इधर-उधर नहीं था तो टैंपो स्टैंड के पास ही किसी साधन का इंतज़ार करने लगे. बूढ़ी मां और अभीत में ख़ूब बातें हुईं.

बूढ़ी मां ने अपने कुर्ते की जेब में लगी सूई पिन निकाली थी. जेब टटोली तो उसमें तीस रुपये थे. बूढ़ी मां ने अभीत को तीसों रुपये देते हुए कहा था- 'ले बेटा...रख ले....'

'नहीं...मेरे पास हैं मां...तू ही रख ले...'

'चुप....डाल मेरे सामने ही जेब में...तू ही रख ले....तेरी कुछ नहीं लगती...' बूढ़ी मां ने उलाहना-सा दिया था.

'मां...'

'रख ले बेटा...रख ले...बड़े काम आयेंगे...मेरे हाथ के रुपये....'

अभीत ने रख लिये थे रुपये. सही ही कहती थीं बूढ़ी मां. कितनी बार उसके काम आये हैं बूढ़ी मां के दिये हुए रुपये. हमेशा बूढ़ी मां ने अभीत को रुपये दिये हैं. हमेशा.

काफ़ी देर तक कोई साधन न मिला तो अभीत ने एक स्कूटर वाले को रुकवा लिया था. उसी पर बैठकर बूढ़ी मां और बहू गांव आयी थीं. बूढ़ी मां ने स्कूटर पर बैठे-बैठे भी अभीत को देखा था. अभीत भी तब तक खड़ा रहा था जब तक उसे स्कूटर दिखना बंद न हुआ था.

अगली सुबह अभीत रोहतक की बस में बैठ गया था.

❑

बूढ़ी मां फिर बोली हैं - 'अभी ऽ ऽ...'

इस नाम के साथ बार-बार कमरे में चुप्पी पसर जाती है. अभीत को कौन पुकारे - 'अभीत लौट आओ. तुम्हारी बूढ़ी मां पुकार रही है.'

संपर्क कोई करे भी तो करे कैसे. ना कोई फोन नंबर ना कोई मोबाइल नंबर. अब रोहतक का कोई भी तो नंबर नहीं. और क्या मालूम रोहतक में कहां बैठा है. अब रोहतक दस घरों की बस्ती या मुहल्ला तो नहीं कि किसी के भी यहां फोन कर दें और अभीत को मालूम हो जाये कि उसकी बूढ़ी मां अंतिम सांसें गिन रही हैं.'

कहते हैं कि मरने वाले की सांसें तब तक अटकी रहती हैं जब तक उसका सबसे प्रिय उससे अंतिम समय में मिल न ले.

अभीत ही है बूढ़ी मां का सबसे प्रिय. जन्म से ही बूढ़ी मां ने उसे अपार स्नेह दिया है. बचपन में जब अभीत घर नहीं लौटता था तो बूढ़ी मां ख़ुद गांव की गलियों में उसे खोजने पहुंचती और अभीत को कान पकड़कर लातीं. उसे चेतावनी देकर ही छोड़तीं - 'फिर सतायेगा बूढ़ी मां को...'

अभीत जब तक मना नहीं करता तब तक उसके कान न छोड़ती थीं बूढ़ी मां.

आज बूढ़ी मां इस हाल में नहीं हैं कि खड़ी होकर किसी से कह दें - 'अभीत. अभीत से मिलाओ मुझे. मेरी सांस अटकी जा रही है उस बिन. अभीत मेरे जिगर के टुकड़े को लाओ...'

और ऐसा होता यदि तो बूढ़ी मां अब तक तो पाट-पाटकर रो पड़तीं. मृत्युशैय्या पर लेटी बूढ़ी मां की हालत देख सबकी आंखें बार-बार सजल हो उठती हैं. कोई करे तो क्या करे. सब दुख की घड़ी में इंतज़ार के सिवाय और कर भी क्या सकते हैं.

बहू भीतर से उठकर बाहर गयी है. आंखों के आंसू पोछंती हुई बहू पड़ोस की उमरावली से जाकर थोड़ा-सा शहद मांगकर लायी है. बहू ने आकर अपनी अंगुली को शहद में भरकर बूढ़ी मां की जीभ से उसे लगाया है. कहते हैं कि शहद मरने वाले के लिए शुभ होता है. अब शुभ-अशुभ तो मालुम नहीं, इतना ज़रूर है कि मरने वाला खाता-पीता मरे.

शहद खिलाने के बाद फिर से चुप्पी छा जाती है. वातावरण इतना भारी-भारी लगता है. बूढ़ी मां की हालत वैसी ही है. अब बूढ़ी मां किसी से बोलती नहीं हैं. गिन-गिनकर सांसें ले रही हैं. आज दिन से तो आंखें भी नहीं खोल रहीं. कोशिश करने पर आंखों को हाथों के सहारे थोड़ा-बहुत खोला जा सकता है. हाथ हटाने पर पलकें फिर मिंच जाती हैं.

बड़ी बेटी उठी है. वह भीतर से जाकर एक फोटो लेकर आयी है. जो एक सुंदर फ्रेम में जड़ी है. बड़ी बेटी यानि अभीत की बुआ ने आकर अपनी मां को दिखाया है - 'मां ! यह रहा अभीत...देख यह रहा अभीत...'

बूढ़ी मां की चेतना में थोड़ी सी हलचल हुई है. वे फिर से बोली हैं - 'अभी ऽ ऽ ऽ...'

'हां..हां... अभीत...देख मां....देख यह रहा...अभीत...'

बूढ़ी मां ने झट मे आंखें खोली हैं. जैसे वे अभीत को देखना चाहती हों. जैसे वे अभीत से कहना चाहती हों - 'अब आया है रे !' जैसे वे अभीत से लिपटना चाहती हों.

आंखें खोलकर ही बड़ी बुआ ने उन्हें फोटो दिखाकर फिर कहा है - 'मां, अभीत...यह रहा अभीत.'

बूढ़ी मां को कुछ दिखाई नहीं दे रहा. उनको कोई फोटो दिखाई नहीं दे रहा. उन्होंने अपनी आंखें बंद कर ली हैं. अब आखें बूढ़ी मां नहीं खोल रहीं.

छोटी और मंझली बुआओं ने एक साथ कहा है -'गंगाजल तो पिला दो...'

सबके ध्यान में आया है. गंगाजल तो पिलाना ही चाहिए. गंगाजल में ही इनके फूल विसर्जित करने हैं. गंगाजल जैसे पवित्र पानी की एक बूंद भी मरने वाले के हलक में पहुंच जाये तो समझो कि मरने वाला सीधा स्वर्ग जाये.

गंगाजल का नाम लेने पर बहू और बड़ी बुआ बाहर उठकर गयी हैं. कई घर जाकर उन्होंने गंगाजल के बारे में पूछा है. काफी डौल-डाल के बाद वे गंगाजल लाने में सफल हुई हैं. एक कटोरी भर गंगाजल लेकर वे तेज़ क़दमों से घर के भीतर घुसी हैं. गंगाजल बेटे ने अपने हाथों में लिया है. अपनी दो अंगुलियां उसने गंगाजल

में डुबोई हैं और मां के मुंह में बूंदों को टपकने दिया है. अब मां का मुंह खोलने की ज़रूरत नहीं. मां का मुंह पहले ही खुला हुआ है. वे अंतिम सांसें मुंह के बल ही ले रही हैं.

बेटे ने जेब से मिश्री की डली और इलायची के दो दाने भी निकालकर बूढ़ी मां के मुंह में डाले हैं.

अब बूढ़ी मां कोई नाम नहीं बोलतीं. 'अभी ऽ ऽ' भी नहीं. बूढ़ी मां की सांसों की रफ़्तार धीमी हुई है. बूढ़ी मां की पोती गांव का ही एक डॉक्टर बुलाकर लायी है. डॉक्टर ने बूढ़ी मां की नब्ज़ देखी है. धड़कनें स्टेथेस्कोप से सुनी हैं. डॉक्टर ने कह दिया है - 'जाने वाली है बूढ़ी'.

'बूढ़ी मां जाने वाली हैं'- सुनकर हल्की-सी चुप्पी फिर पसर गयी है. फिर एकाएक चुप्पी टूट गयी है. रूदन की आवाज़ें सुनाई दी हैं. पहले सहज-सहज, फिर थोड़ी तेज़. इतनी भी तेज़ नहीं. बहुएं-बेटियां खुलकर नहीं रो रहीं.

बूढ़ी मां जा चुकी हैं. बूढ़ी मां ने किसी के आने का इंतज़ार नहीं किया है. अभीत का भी नहीं. शायद बूढ़ी मां इंतज़ार करते-करते थक गयी हैं.

रुलाई ने ज़ोर पकड़ लिया. बहू छाती पीटकर रो रही है.

अभीत का कोई पता नहीं है. ऐन वक़्त पर मम्मी ने उसके पापा को बताया है कि वह रोहतक गया है, क़िताब छपवाने. लेकिन पापा को पहले ही यह पता लग चुका था. बड़ी बुआ ने उन्हें बता दिया था. कफ़न और अर्थी की तैयारियां शुरू हो गयी हैं.

कोई कहता है पोते को कैसे ख़बर करें.

वातावरण में मायूसी है.

ठीक आधे घंटे बाद अभीत दिखा है सबको. उसे नहीं मालूम कि उसके घर में क्या घटित हुआ है. वह काला बैग लटकाये आंगन के किवाड़ों को ठेलकर आया है. आंगन बड़ा है. काफ़ी बड़ा. मुख्य द्वार के किवाड़ पुराने हैं. बहुत पुराने. वे बंद ही रहते हैं बंद होते और खुलते समय चूं ऽ ऽ... की आवाज़ निकालते हैं. बिन पत्थर लगाये खुले नहीं रहते.

कुछ आदमी आंगन में हैं. कुछ बाहर. घर के सामने के पीपल के पेड़ से लकड़ियां काटी जा रही है. अर्थी के लिए पीपल की लकड़ियां ही होनी चाहिए.

अभीत को देखते ही बड़ी बुआ उसकी तरफ़ भागी हैं. उसने अभीत को छाती से चिपकाया है. वह ज़ोर से रोती हुई बोली है - 'अभीत...मां गयीं...'

अभीत को विश्वास नहीं हुआ है. वह भीतर ही चला जा रहा है. उसे बुआ को रोते हुए देखकर भी महसूस नहीं हो रहा है. वह भीतर भी मम्मी और बुआओं को रोते हुए देख रहा है. उसे नहीं मालूम क्या हो रहा है. वह चुप है. भीतर घुसा है. सामने डले तख़्त पर वह बैठ गया है. उसने बैग गले से निकाल तख़्त पर रख दिया है.

मम्मी और बुआओं को वह दहाड़ मारते देख रहा है.

अभीत की आंखों में आंसू नहीं हैं. उसे नीचे बैठी कई बूढ़ी औरतों ने कहा है - 'मां को देख लो...'

वह भीतर गया है, कमरे के भीतर. उसे किसी औरत ने बूढ़ी मां का मुंह दिखाया है. अभीत ने अपनी बूढ़ी मां का मुंह देख लिया है. एक जनी बोली है - 'मिट्टी ही रह गयी अब तो...'

वह अब भी नहीं रोया. उसकी आंखें स्थिर-सी सब-कुछ देख रही हैं. सब अचंभा कर रहे हैं कि अभीत रो नहीं रहा. उसे तो उसकी बूढ़ी मां सबसे ज़्यादा प्यार करती थीं. उसे तो उसकी बूढ़ी मां सबसे ज़्यादा चाहती थीं.

अर्थी को सजाया गया है. अभीत सब कुछ देख रहा है. अर्थी को गुब्बारे बांध दिये गये हैं. अभीत सब कुछ देख रह है. अर्थी को औरतों ने तीन (रंगीन लूगड़ी) औढ़ाई हैं. अभीत सब-कुछ देख रहा है.

लोग सोच रहे है. अभीत रो नहीं रहा. उसे उसकी दादी के जाने का क्या कोई ग़म नहीं. वह अपनी बूढ़ी मां को ले जा रहा है. किसी के सहारे वह कांधिया बना चल रहा है. उसकी आंखों में कोई आंसू नहीं है. जैसे उसे कुछ न पता चल रहा हो कि यह सब क्या हो रहा है.

उसके सामने उसके पापा ने बूढ़ी मां की चिता जलायी है. अभीत की आंखों में अब भी कोई आंसू नहीं है.

श्मशानघाट में एक तरफ़ औरतें बैठी हुई भजन गा रही हैं. यूं औरतों को श्मशानघाट में जाने की इजाज़त नहीं है किंतु बड़े-बूढ़ों के मरने पर उन्हें यह छूट मिली रहती है.

औरतें भी सोच रही हैं - अभीत रो क्यों नहीं रहा. लोग कह रहे हैं - बड़ा नुक़सान हो जायेगा. अभीत नहीं रोया तो. भीतर ग़म बैठ जायेगा.

अभीत का रोना बहुत ज़रूरी है. पर वह है कि रो ही नहीं रहा.

सब श्मशानघाट से लौट कर आये हैं. अभीत तेज़-तेज़ क़दमों से चल कर आया है. वह घर में घुसा है. किवाड़ों को ठेलकर उसने सारे घर को देखा है. उसे सूनापन लगा है. गहरा सूनापन. उसे घर काटने को दौड़ रहा है.

वह आकर अपनी बूढ़ी मां को देख रहा है. उसे बूढ़ी मां कहीं नज़र नहीं आ रहीं. वह धीरे-धीरे उदास-सा हो रहा है. उसे कुछ-कुछ याद आ रहा है.

वह रोने को है.

उसने दोनों हाथों से अपनी बुश्शर्ट के कॉलर को पकड़ा है. उसकी बुश्शर्ट के दो बटन टूट गये हैं.

वह ज़ोर लगाकर चीख़ा है - 'मां ऽ ऽ....'

ग़ज़लें

डॉ. क़मर रईस 'बहराइची'

सब जिसको देखते थे वो मंज़र कहां गया,
जो आबरू-ए-दार था वो सर कहां गया ?
चेहरे पे अब किसी के तबस्सुम नहीं है क्यूं,
घर से हमारे ख़ुशियों का मंज़र कहां गया ?
आया था ले के हाथों में परचम जो अम्न का,
शहरे वफ़ा में आके वो लश्कर कहां गया ?
हैरत से ढूंढ़ती हैं निगाहें ज़माने की,
रहता था इक फ़क़ीर यहां पर कहां गया ?
प्यासों की जिसने प्यास बुझाई तमाम उम्र,
होठों की अपने प्यास वो लेकर कहां गया ?
इक़बाले जुर्म कर लिया उसने मगर, 'क़मर',
क्यूं मुझसे पूछता है मिरा सर कहां गया ?

३३९, बड़ी हाट, बहराइच (उ. प्र.) २७१८०१

डॉ. नसीम अख़्तर

मेरी क़िस्मत में तारा नहीं है ।
ज़िंदगी में उजाला नहीं है ।।
बस्तियां फूकें, लाशें बिछायें ।
ये तरीक़ा हमारा नहीं है ।।
खा गया कितनों को ही समंदर ।
ज़र्रा भर भी फ़सुर्दा नहीं है ।।
अब हमारे करम से नदी में ।
ज़िंदगानी की धारा नहीं है ।।
मैं अलमदार हूं रौशनी का ।
मुझको ज़ुलमत गवारा नहीं है ।।
शहर, गांव जहां देखो 'अख़्तर' ।
किस जगह ख़ून बहता नहीं है ।।

जे. २६/२०५, मतलउल-उलूस, कमलगढ़ा,
वाराणसी (उ. प्र.) २२१००१

सच्चिदानंद 'इंसान'

शहर का हर आश्ना भी अजनबी सा हो गया ।
भीड़ तो बढ़ती गयी इंसान तन्हा हो गया ।।
चिल-चिलाती धूप में हम रेत पर चलते गये ।
मुद्दतों से जाने क्यों बेगाना साया हो गया ।।
याद बीते लम्हों की करती रहीं अठखेलियां ।
फ़स्ले गुल क्या आयी है हर ज़ख़्म ताज़ा हो गया ।।
रफ़्ता-रफ़्ता आशियां जलने का ग़म मिट जायेगा ।
दाग़ लेकिन दिल में अपने उम्रभर का हो गया ।।
लौट कर आये ख़िज़ां या रूठकर जाये बहार ।
अब तो तन्हाई का इंसा आश्ना सा हो गया ।।

सहारा मिशन स्कूल,
जी. पी. वर्मा लेन, मुंदीचक, भागलपुर ८१२ ००१

मानु 'प्रकाश'

इस ज़माने के कैसे कैसे लोग ।
बंद दर खिड़की से हैं झांकते लोग ।।
कोई मिला ही नहीं मिज़ाज का मेरे ।
अपनी अपनी ही मिलते हांकते लोग ।।
गिर गये अपने ही गिरेबां में वो ।
वो गिरेबां में मेरे झांकते लोग ।।
सब कुहासे की शक्ल में ढल जाते ।
आज पहचान में न आते लोग ।।
सांस लेने की भी नहीं फ़ुरसत ।
रहते हैं दौड़ते व हांफते लोग ।।

द्वारा - पितांबर झा,
आर्यभट्ट स्कूल के पास, विवेकानंद पथ,
आदमपुर, भागलपुर ८१२ ००१

सारा घर चीख़ा है -'मां S S....'. दीवारें चीख़ी हैं 'मां S S....' आंगन का पेड़ चीख़ा है - 'मां S S....' ऊपर झांकता आसमान चीखा है - 'मां S S....'

उसने धरती पीटी है.

वह गला फाड़कर रो रहा है. वह औरतों की तरह छाती पीटकर रो रहा है.

लोग श्मशानघाट से आ गये हैं. घर के जनों ने नीम की पत्तियों से हाथ धोये हैं. बुआएं, मम्मी, पापा, बहन सब किवाड़ों को ठेलकर घुसे हैं.

उन्होंने अभीत को रोते हुए देखा है.

अभीत अब भी रो रहा है.

एक बुजुर्ग ने धीरे से आकर कहा है - 'रोने दो उसे... नहीं तो ग़म बैठ जायेगा.'

अभीत रो रहा है. उसके रूदन से घर के जनों को थोड़ा सुकून मिला है.

कोथल कलां, महेंद्रगढ़-१२३०२८ (हरियाणा)
फोन : ०१२८५-२४६०५५

कहानी

एक स्वप्न का अंत

वह सिर्फ़ छः साल की थी या शायद इससे भी कुछ कम. स्कूल से लौटने के बाद उसका अधिकतर समय होमवर्क करने या बाहर गली में सोनू, टिंकू और दूसरे साथियों के साथ खेलने में बीतता. मां के पास वह बहुत कम ही रह पाती अलबत्ता पड़ोस की सुनीता दीदी से वह इतना अधिक प्यार करती कि उन्हीं की साइकिल के पीछे बैठकर स्कूल आते-जाते भी उसका मन न भरता. सांझ ढलते ही फिर से उनके पास चली जाती - 'दीदी कहानी सुनाओ ना......' दीदी उसे ढेर-सी कहानियां सुनाती. फूलों-जंगलों की कहानी, नदियों-पहाड़ों की कहानी, नन्हें खरगोश-गिलहरी की कहानी या प्यारी-प्यारी परियों की कहानी. पर रोज़ ऐसा होता कि वह सुनीता दीदी से कोई कहानी सुन रही होती और चुपके से आकर नींद उसे सुला देती. पर..... कहानी फिर भी चलती रहती. ....हां....सपने में. दीदी धीरे से उसे उठाकर अपने कंधे से लगाती और उसके घर लाकर सुला देती. पर वह अब भी दीदी के साथ होती.

सुबह अपने कमरे के बेड पर ख़ुद को देखकर उसे कभी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों होता था..... वह रोज़ तो दीदी के साथ उनके घर में सोती पर सुबह उठते समय अपने स्वयं के घर में होती.

अक्सर वह अपने सपनों और हक़ीक़त में फ़र्क नहीं कर पाती थी. कभी-कभी जो हो रहा होता वह सपना होता या जो सपने में देख रही होती, हक़ीक़त होती.

पिछले महीने ही जब उसने अपने स्कूल के एक कार्यक्रम में अपनी प्यारी-सी आवाज़ में गाना सुनाया तो ढेरों तालियां बजी थीं. कार्यक्रम के समापन पर उसे एक गिफ्ट हैंपर भी दिया गया था. उसे सब कुछ सपना-सा लगा और वह ख़ुशी से उछल पड़ी. .....अचानक उसे ख़याल आया कहीं वास्तव में स्वप्न ही तो नहीं? अपनी जांघ पर बाकायदा चिकौटी काट कर ही उसे तसल्ली हुई थी.

सपने उसे हर रात आते. खाना खाने के तुरंत बाद वह दीदी के घर दौड़ पड़ती और दीदी से लिपट जाती... -- 'कहानी सुनाओ ना.....' हालांकि वह कोई भी कहानी पूरी न सुन पाती. कहानी ख़त्म होने से पहले ही गुलाबी नींद का कोई झोंका आता और वह बह जाती. रात भर एक-एक कर स्वप्नों के कंधे बदलते रहते और वह यहां से वहां, वहां से यहां घूमती रहती. कभी-कभी तो वह बहुत दूर निकल जाती.... एक अनजानी जगह. ऊंचे-नीचे मकानों, रेत के धोरों और नदी की धार पर से गुज़रते हुए जंगल और पहाड़ों से भी ऊपर वह बादलों तक जा पहुंचती. रुई की गेंदों जैसे बादल ! वह उन्हें अपनी बाहों में भर लेना चाहती. सफ़ेद, हल्के गुलाबी या कुछ-कुछ स्लेटी रंग लिये हुए खरगोश की तरह भागते बादलों के मध्य वह ख़ुद एक बादल हो जाती..... नन्हा सा बादल. ख़ुशी से वह नाचने लगती तो हल्के गुलाबी रंग की उसकी फ्रॉक का घेर फैलकर सब कुछ ढक लेता और उसके चारों ओर हल्की लालिमा बिखर जाती. बादल ग़ायब हो जाते. वह फिर से बादलों के पास जाना चाहती पर कमरे की खिड़की से सूरज की पहली किरण चुपके से भीतर आ जाती और मां उसे झिंझोड़ कर जगा देती. वह आंखें फाड़-फाड़ कर मां की तरफ़ देखती. नज़रें गड़ाकर बिखर गये सपनों को फिर से संजोने का प्रयास करती.

'क्या देख रही है यूं..... उठना नहीं ?' मां उसके गालों को प्यार से सहलाती. तब तक उसका निचुड़-सा गया चेहरा फिर से सामान्य होने लगता. कमरे से आती धूप का एक टुकड़ा अचानक उसके गालों पर चमकने लगता.....जैसे रात भर के सपनों का अहसास दिप-दिप करने लगा हो.

पूर्ण शर्मा 'पूरण'

सपने उसे पहले भी आते थे जब वह इससे भी छोटी थी.... शायद चार साल की या इससे भी कुछ कम. पर तब उसके सपनों और हक़ीक़त में अधिक अंतर न था. सपने में रात भर मां के साथ उड़ रही होती तो दिन में भी मां की ही अंगुली थामे या उसके आगे-पीछे घूमती रहती. स्कूल जाने लगी तो उसके स्वप्नों में मां के साथ कुछ और लोग भी जुड़ने लगे.... पर वे सब भी वही लोग थे जो उसके इर्द-गिर्द होते. जैसे टिंकू... मोनू... निशा.... भोलू..... और सुनीता दीदी.

सुनीता दीदी उसे बहुत अच्छी लगती. लंबे काले बालों से घिरा उसका गोल चेहरा चांद-सा दमकता. वे जब उसे कहानी सुनाती तो वह उनकी पनीली आंखों में खो जाती.

सुबह उन्हें जब कॉलेज जाना होता तो अपनी साइकिल को दरवाज़े के ठीक सामने लाकर ट्रिंग.....ट्रिंग घंटी बजाती. वह

अपना बस्ता उठाये तैयार होती और भाग कर साइकिल के पीछे जा बैठती. चमकते लाल रंग वाली साइकिल के पीछे बैठकर सवारी करने में उसे बड़ा मज़ा आता. खुली सड़क पर आते ही दीदी जब साइकिल को लहराकर चलाती तो वह ख़ुशी से झूम उठती. कुछ ही देर में जैसे उड़ने लगती....

मुख्य सड़क से उतर कर साइकिल जब उसके स्कूल की तरफ़ जाने वाली कच्ची सड़क पर मुड़ती तो ऊंचाई पर चढ़ते हुए ज़रा धीमे हो जाती. ऊंचाई पर कुछ लहराकर चलने से साइकिल उसे रेंगती हुई-सी लगती. धीरे-धीरे ऊंचाई पर चढ़ने से उसे लगता जैसे वह बादलों को छूने जा रही हो. पर बादल....? साइकिल जब टीले की पूरी ऊंचाई पर भी पहुंच जाती तब भी उतनी ही ऊंचाई पर ऊंघते हुए दीखते. अब साइकिल को फिर से नीचे ढलना होता तो नीचे जाती हुई सड़क पर वह बहती हुई-सी लगती. उसे लगता वह पानी में तैर रही है. वह साइकिल के ठीक विपरीत सीधा तन जाती बल्कि कुछ-कुछ पीछे की ओर ही झुक जाती. दीदी के लहराते बाल भी जैसे उसका पीछा करते. उनके खुले बालों में अपना चेहरा छुपाये वह फिर से सब कुछ भूलने लगती. बालों से आती भीनी-भीनी ख़ुशबू उसके बाजुओं को थाम कर उड़ा ले जाती..... कहीं दूर.

यूं उसके सपनों का कोई अंत न था. पर जागते सोते हर सपने के अंत में वह उड़ने लगती. कभी-कभी तो उसे लगता सचमुच ही उसके दोनों हाथों के पास दो नन्हें-से पंख निकल आते. कोमल और चमकते हुए रंग-बिरंगे पंख. उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहता. पलभर में ही वह उड़कर दूर निकल जाती. ...वहां तक जहां सर्रर से गुज़रती हवा भी मह-मह महकती ख़ुशबुओं में बदल जाती. वह दौड़ कर ख़ुशबुओं को समेट लेना चाहती. पर उसके पास जाते ही तैरते हुई ख़ुशबुओं का सैलाब अचानक सिमटने लगता. उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहता जब वह घनीभूत होती ख़ुशबुओं को स्वयं के जैसी ही नन्हीं-नन्हीं परियों में बदलते हुए देखती. वह सब के साथ मिलकर हंसती-गाती और नाचने लगती.

दीदी के साथ जब वह साइकिल के पीछे बैठकर स्कूल जाती तो कभी-कभी ठीक से समझ नहीं पाती थी कि उस समय वह सचमुच ही स्कूल जा रही होती थी या स्वप्न में. क्योंकि दोनों ही स्थितियों में उसके नथुनों में दीदी के बालों की सौंधी-सी महक बराबर बनी रहती.

उसे ठीक से मालूम तो न था पर कभी-कभी उसे लगता.... शायद दीदी भी सपने देखती थी. मुख्य सडक से उसके स्कूल की तरफ़ कच्चे रास्ते पर मुड़ने से ठीक पहले एक बाग़ था. साइकिल जब उस बाग़ के सामने से गुज़रती तो यकायक दीदी के हाथ साइकिल के ब्रेकों पर कस जाते.

'आ...... जरा सुस्ता लें.'

०१ जुलाई १९६६,
स्नातकोत्तर (राजस्थानी)

लेखन : *'हंस', 'कथाबिंब', 'कथन', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'मधुमती', 'उद्भावना', 'जागती जोत', 'राजस्थान पत्रिका' व 'दैनिक भास्कर' आदि में रचनाएं प्रकाशित. आकाशवाणी से निरंतर रचनाएं प्रसारित.*

प्रकाशन : *"डौळ उडीकती माटी" (राजस्थानी कहानी संग्रह).*

संप्रति : *चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, राजस्थान.*

दीदी बग़ीचे में खिले हुए प्यारे से फूलों के पास अपना चेहरा ले जाकर कुछ बुदबुदातीं और अपने गालों को कोमल-कोमल पंखुड़ियों से सहलातीं तो वह कुछ समझ न पाती. पर रात में जब सपने में भी दीदी अपने गालों को फूलों की पंखुड़ियों से छुआते हुए फुसफुसाती तो उनकी फुसफसाहट को वह साफ़ सुन लेती. दीदी के बतियाने से फूल भी हंस-हंस कर बातें करने लगते. वह भी शर्माती हुई दीदी की बगल में जाकर खड़ी हो जाती.

'ये चुन्नी.....चुनिया है....' दीदी फूलों से उसका परिचय कराती और कुछ ही देर बाद वह भी उनके साथ हंस-हंसकर खेल रही होती......भाग रही होती......तितलियों सी उड़ रही होती.

अब तो वह भी चाहने लगी थी कि स्कूल जाते हुए कुछ देर बग़ीचे में बैठ लिया जाये. हरी-हरी नाज़ुक-सी घास की पत्तियों पर नंगे पांव चलना उसे बहुत सुहाता. घास की पत्तियों के कोनों पर ठिठक कर रह गयी ओस की बूंदें जब धूप के चौंधे में मोती-सी चमकतीं तो वह फूली न समाती. चमकते हुए इन मोतियों में रोशनी से बनते बिगड़ते रंगों को वह अपनी आंखें झपका कर देखती जाती. उसका मन करता कि इन सारे मोतियों को चुनकर अपने दामन में भर ले.

उस रोज़ भी वह दीदी के साथ थी. बग़ीचे के मेन गेट के ठीक सामने उन्होंने साइकिल खड़ी की और उसकी अंगुली थामे बग़ीचे में आ गयीं. धूप अभी पूरी तरह खिली नहीं थी. ऊपर

आसमान में हल्के-फुल्के बादल थे जो छितराकर दूर-दूर ठहर गये थे. पर सरककर कोई एक टुकड़ा जब सूरज के ऐन सीध में आ जाता तो सीधी आती हुई धूप अचानक बिखर जाती. छिटकी हुई किरणें दूर ऊंचे-ऊंचे मकानों की मुंडेरों पर चिपक जातीं जैसे अचानक किसी ने चमकती हुई कतरनें बिखेर दी हों.

बग़ीचे में घुसते ही उसने अपने पावों से जूते निकाल लिये और नंगे पांव घास पर दौड़ने लगी. झूले के पास पहुंची तो उस पर बैठ कर झूलने लगी. मन फिर भटका और ख़ाली पड़ी बेंच पर आकर बैठ गयी. इधर उधर देखा. दूर कोने में खड़ी एक गुलाब की झाड़ी में नन्हीं चिरैया चिंचिया रही थी. वह उठी और सधे हुए क़दमों से झाड़ी के नज़दीक पहुंच गयी. चिंचियाने के साथ-साथ चिड़िया बार-बार अपनी गर्दन को भी घुमा रही थी. गर्दन को इस तरह घुमाने से कुछ-कुछ गहरे भूरे रंग के कोमल बालों के पीछे छुपा काला रंग उसकी गर्दन के चारों ओर एक पतली पट्टी के रूप में दीख पड़ता. वैसे अपनी छोटी-सी भूरी देह पर कुछ-कुछ काले रंग की पतली लकीरों के कारण एकदम से फैसला कर पाना मुश्किल था कि आवाज़ उसी की थी. हां.... उसकी हिलती हुई गर्दन और तेज़ी से घूमती हुई गोल-गोल आंखों से अवश्य अंदाज़ा लगाया जा सकता था.

उसकी आंख सिर्फ़ चिड़िया पर ही टिकी थी. ज़रा दूरी पर खड़े होकर वह उसे ध्यान से देखने लगी. पेंडुलम की तरह घूमती गर्दन के साथ-साथ चिड़िया अपनी छोटी-सी दुम को भी कभी-कभार ऊपर नीचे फ्टक रही थी.

उसने अपनी ठुड्डी के नीचे हाथ रखे हुए आंखों में आंखें डाल दीं और गर्दन को चिड़िया की तरह ही घुमाने लगी. साथ ही चिड़िया की घूमती हुई आंखों की तरह स्वयं अपनी आंखों को भी घुमाना चाहा. पर आंखें ठीक से घूम नही पायीं. हां.... इस प्रयास में उसकी पूरी गर्दन ही घूमते-घूमते अचानक ऊपर नीचे हो जाती.

अभी वह फिर प्रयास करने की सोच ही रही थी कि उसके कानों में दीदी के तेज़-तेज़ बोलने की आवाज़ पड़ी. उसने फुर्ती से घूमकर देखा जहां दीदी खड़ी थी एक लड़का दीदी के पास खड़ा था. लड़का शायद ज़ोर-ज़ोर से कुछ कह रहा था पर उसे कुछ सुनाई न दिया. दीदी भी ज़ोर-ज़ोर से बोल रही थीं. उसे लगा, दीदी शायद गुस्से में थीं. अचानक लड़का दीदी की ओर बढ़ा. दोनों हाथ उठाकर दीदी के चेहरे को अपनी बाहों में भर लेना चाहा. पर....

'तड़ाक ऽ.......'

लड़के के गाल पर चांटा पड़ा तो वह सहम गया. दीदी की आंखों से चिंगारियां निकल रही थीं. लड़का अब वापिस लौट रहा था पर जाते-जाते ज़ोर-ज़ोर से कुछ कह भी रहा था. गुस्से में दीदी के नथुने फूल-पिचक रहे थे.

वह दौड़कर दीदी के पास पहुंची तब लड़का जा चुका था.

'क्या हुआ दीदी....?'

'...............'

दीदी ने सिर्फ़ उसकी तरफ़ देखा पर कुछ जवाब न दिया. उसकी छोटी-सी समझ में अब तक कुछ नहीं आया था. दीदी की जलती हुई आंखों को देखकर वह सहम गयी थी और फिर से कुछ न पूछ सकी पर उसे लगा कि लड़के को वह पहचानती थी अरे हां.... यह तो वही लड़का था जो इन दिनों रोज़ उन्हें रास्ते में कहीं न कहीं मिल जाता था. अपनी मोटर साइकिल को उनकी साइकिल के साथ साथ चलाते हुए दीदी से कुछ न कुछ कहता रहता. कभी-कभी शायद इंगलिश में कुछ फुसफुसाता जाता. हाथों से उनकी तरफ़ इशारे करता रहता.

दीदी उसकी तरफ़ ध्यान न देती और साइकिल की रफ़्तार बढ़ा देती. साइकिल जब कच्चे रास्ते पर ढल जाती तो वह पीछे मुड़कर देखती लड़का अब काफ़ी पीछे रह जाता और अपनी मोटर साइकिल वापिस मोड़ रहा होता. पर कभी-कभी वह बाग़ के ठीक पहले ही मोटर साइकिल को तेज़ी से चलाकर साइकिल के आगे लाकर रोक देता. दीदी के लिए अब उसके पास से निकलना संभव न होता. साइकिल को रोकते हुए दीदी दबी ज़ुबान में मगर गुस्से से कुछ कहती. लड़का हंसते हुए अपना हाथ हिलाता हुआ अलग हट जाता. दीदी कुछ बड़बड़ाते हुए फिर से साइकिल पर सवार हो जाती पर वह कुछ समझ नहीं पाती थी कि ऐसा क्यों होता था ? हर दूसरे दिन या कभी-कभी रोज़ ही ऐसा होता. उसने इन दिनों कुछ-कुछ महसूस किया था. ......शायद दीदी कुछ परेशान रहने लगी थी.

दीदी का गुस्सा अब कम हो चुका लगा उसे. हिम्मत करके उसने फिर से पूछ लेना चाहा...... 'दीदी......यह वही लड़का था ना......?' पर दीदी के चेहरे पर पसरी पथरीली ख़ामोशी से सहम गयी वह और शब्द होठें तक पहुंचने से पहले ही बिखर गये.

उसे स्कूल के गेट पर छोड़ते ही दीदी मुड़ गयी थी सदा की तरह उसने 'किस' के लिए अपना गाल आगे किया पर दीदी ने उसकी तरफ़ देखा तक नहीं.

वह चुपचाप स्कूल में आ गयी. अन्यमयस्क सी इधर-उधर घूमती रही. सोनू....मोनू..... टिंकू.....सभी ने उससे बातें करनी चाहीं पर वह किसी के पास नहीं बैठी. घंटी बजी तो धीरे-धीरे चलकर क्लास में जा बैठी. पहला पीरियड श्रेया मैडम ही लेतीं. श्रेया मैडम उसे बहुत अच्छी लगतीं. पढ़ाते हुए वह जब अपनी गर्दन को बार-बार हिलातीं तो बालों की एक लट चुपके से उनके गाल तक खिसक आती. वर्षा के ठीक बाद धुले-धुले से आसमान-सी उनकी आंखों में इतना प्यार होता कि वह उसे दीदी-सी दिखतीं.

पर आज श्रेया मैडम पढ़ाकर चली भी गयीं और उसे पता न चला. खाने की छुट्टी होते ही सभी बच्चे अपना-अपना टिफिन बॉक्स लेकर बाहर पेड़ों के नीचे जा बैठे थे. पर उसने अपने टिफिन को छुआ तक नहीं.

दोस्तों ने उसे साथ चलने को कहा पर वह क्लास रूम में अपने स्थान पर ही बैठी रही. गुमसुम. पर भीतर ढेर-सारे प्रश्न बींध रहे थे......... 'वह लड़का कौन था.....?' 'दीदी इतनी ग़ुस्सा क्यों थी ?'

रात को दीदी के घर गयी थी पर दीदी से मिल न सकी. दीदी की मां बता रही थी, 'उसका सर भारी था.... दवा लेकर सो गयी है.....' सुनकर वह भागकर दीदी के कमरे में गयी. दीदी रज़ाई ढांपे लेटी थी. पुकारना चाहा पर अचानक 'दीदी परेशान होगी....' सोचकर लौट पड़ी

घर में आकर बिस्तर पर लेटी तो देर तक नींद नहीं आयी. आज उसे अजीब-सा लग रहा था. मां आयी और उसके साथ लेट गयीं. मां जानती थी कि चुन्नी रोज़ कहानी सुनती थी सो कहानी सुनाना शुरू किया. वह कहानी सुनती रही और कभी बग़ीचे में कभी दीदी के कमरे में भटकती रही.

नींद में वह अजीब-अजीब सपनों से घिरी रही. एक सपने में दीदी रो रही थी. वह बार बार दीदी की आंखों से आंसू पोंछ रही थी. पर जितना वह ढांढस बंधाने का प्रयास करती दीदी उतना ही अधिक फफक पड़ती. उसकी समझ में नहीं आ रहा था... वह क्या करे ?

एक दूसरे सपने में दीदी उसे छोड़ कर जा रही थी. वह रोती-चिल्लाती उनके पीछे भाग रही थी. पर दीदी ठहरी नहीं, चली गयी.

एक और सपने में दीदी पंखे से लटक रही थी. उनकी दोनों आंखें उबल पड़ी थीं और जीभ बाहर लटक आयी थी. डर के मारे वह चीख़ पड़ी.....

'क्या हुआ.....?' मां ने उसे झिंझोड़ा और सिर पर हाथ फिराने लगी. वह मां के चेहरे की तरफ़ देखती रह गयी. कुछ समझ न सकी, चेहरे पर भय की लकीरें खिंच आयी थीं. - 'बुरा सपना आया था ? .....चलो अब सो जाओ....' मां ने उसे फिर सुलाने का प्रयास किया.

रात में जरा बारिश हुई थी पर सुबह एकदम मौसम ताज़ा व खुला था. दूर-दूर तक बादलों के निशान तक न थे. धुला-धुला सा आसमान सूरज की पहली किरण के साथ ही चमक उठा था. वह उठी, पर रात भर की बेचैनी व अनिद्रा अब भी उसके चेहरे पर ठहरी थी. मां ने गर्म पानी कर दिया, वह नहा ली. बुझा-बुझापन ज़रा कम हुआ. तैयार होते-होते स्कूल का टाइम हो गया और वह अपना बस्ता थामे दीदी का इंतज़ार करने लगी.

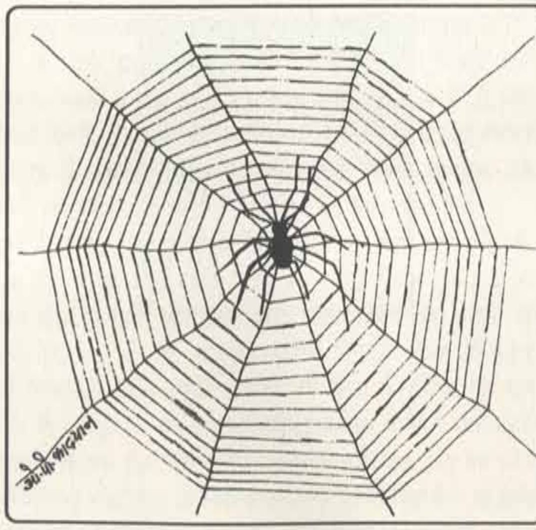

एक बार उसे लगा शायद दीदी नहीं आयेगी. पर आयेगी क्यों नहीं.... अब तो सर ठीक हो ही गया होगा ! पर...... दीदी की नाराज़गी ? वह फिर उदास हो गयी.

दरवाज़े के बाहर उसे साइकिल की घंटी सुनाई दी तो वह झट से खड़ी हो गयी. पैरों को पंख लग गये जैसे.

'दीदी........' वह भाग कर दीदी की बाहों में झूल गयी. दीदी ने उसके गाल पर किस किया तो वह खिल उठी. उनकी आंखों में झांका. साफ़ आसमान-सी आंखों में बीते हुए कल की गर्द का नामोनिशान तक न था. पर चेहरे की ख़ामोशी से उसे लगा शायद दीदी अब भी कुछ परेशान थीं.

'क्या हुआ था ....दी.....दी', दीदी की आंखों में देखते हुए उसने फिर से पूछ तो लिया पर अचानक कठोर होते उनके चेहरे की तरफ़ देखकर सहम गयी. लगा चेहरे पर ठहरी ख़ामोशी अचानक दहकने लगी थी. वह चुपचाप पीछे कैरियर पर बैठ गयी.

बग़ीचा आ गया था पर दीदी ने आज साइकिल को नहीं रोका. लोहे के गेट की झिरियों से उसने बग़ीचे के भीतर झांकने की कोशिश की. घास के होठें पर ठहरे मोतियों की लड़ियां उदास थीं. हमेशा दिप-दिप करते फूलों के चेहरे झुके थे. उसे लगा दूर कोने की झाड़ी में चिरैया आज भी बैठी थी पर.... चुप-चुप सी उसकी गोल-गोल आंखें उन्हें गेट के सामने से गुज़रते हुए देख रही थीं. उसकी इच्छा हुई एक बार भाग कर बाग़ में हो आये पर दीदी....? वह तो साइकिल को सरपट दौड़ाये ही जा रही थी. रोज़ तो वे पीछे मुड़-मुड़कर उससे बातें करती रहतीं. पर आज.... साइकिल के पैडलों पर रखे उनके पांव मशीन की तरह घूम रहे थे. चुप्पी के भीतर जो कुछ भी स्थिर होने को था, पांवों की गति में उड़ेल देना चाहती हों जैसे.

साइकिल अब मुख्य सड़क के चौराहे से थोड़ी दूरी पर थी. उसने फिर से मुड़कर देखा गेट काफ़ी पीछे छूट चुका था. मायूसी से उसने अपनी निगाहें हटा लीं और सड़क के सहारे दूर तक खिंची बग़ीचे की दिवार पर टिका दी. अचानक उसे लगा दीवार के पीछे घास की नाज़ुक-सी पत्तियों के लरज़ते होंठ, रंग बिरंगे फूलों के, नन्हें से हाथ और चिरैया की मटकती हुई आंखें उसे इशारे से बुला रही हैं. उससे रहा नहीं गया. व्याकुल-सी निगाहों से उसने नज़दीक आते चौराहे की ओर देखा. साइकिल को वहीं से ही कच्चे रास्ते पर ढल जाना था पर बग़ीचा......? सोचकर वह बेचैन हो उठी. पीछे की ओर लहराते दीदी के दुपट्टे को तेज़ी से खींचा और पुकारा..... 'दी.....दी.....'

उफ़्फ़....!

आवाज़ उसके होठें तक पहुंच ही न पायी होगी. तेज़ी से आती एक मोटर साइकिल जिस पर तीन युवक सवार थे, उनके ऐन क़रीब से गुज़री और पीछे बैठे युवक ने अचानक दीदी के चेहरे पर पानी-सा कुछ फेंक दिया.

साइकिल लहराई और गिर पड़ी. वह भी छिटक कर दूर जा पड़ी. उसकी समझ में कुछ भी न आया.

'आं ऽ.... ई ऽ ऽ'. उसे दीदी की चीख़ सुनाई दी तो वह फुर्ती से खड़ी हुई पर उसके मुंह से भी चीख़ निकल गयी. पांव में मोच आ गयी थी शायद. अपने पैर को घसीटते हुए दीदी की तरफ़ बढ़ी. वे लगातार चीख़ रही थीं और तड़प रही थीं.

भागती सड़क अचानक ठहर गयी.

'गाड़ी नज़दीक लाओ भई.....' भीड़ में से कोई कह रहा था. भय और पीड़ा से कांपते हुए लगभग एक टांग के सहारे उसने भीड़ को चीर कर दीदी के पास जाना चाहा. पर पीठ पर झूल रहा बस्ता बार-बार लोगों की टांगों में उलझ रहा था. एक गाड़ी नज़दीक लायी गयी तो भीड़ एक तरफ़ से फट गयी. दीदी ऐन सामने थी उसके.

'नहीं.... ऽ ऽ ऽ....' उसके मुंह से चीख़ निकल गयी. सड़क पर पड़े हुए दीदी बुरी तरह से तड़प रही थी. उनका चेहरा बहुत भयानक और डरावना दिख रहा था.

चेहरे, हाथों और दूसरे अंगों पर गिरे तेज़ाब का असर इतना गहरा था कि जगह-जगह से चमड़ी उधड़ कर अलग हो गयी थी. गालों और ठुड्डी का मांस भी निकल आया था जो लटक कर उन्हें और भी वीभत्स कर रहा था. उन्हें इस हालत में देखते ही वह बेहोश हो कर गिर पड़ी.

रात..... दिन और रात..... समय गुज़र रहा था पर वह अब भी बेहोश थी. आज चौथा दिन था. इस बीच उसे पलभर के लिए होश आता. वह अपने चारों ओर बैठे मम्मी-पापा, चिंटू, मोनू और दूसरे लोगों की भीड़ के चेहरों की ओर विस्फारित नेत्रों से देखती. अचानक उसकी सूखी आंखों में सपने-सा एक दृश्य तैर जाता.

वह तेज़ी से साइकिल पर जा रही होती. हर पल उसके पैरों का दबाव साइकिल के पैडलों पर बढ़ रहा होता और साइकिल हवा से बातें करने लगती. ऊपर फैला आसमान जैसे उसके भीतर उतर आता और वह उड़ने लगती. सड़क के दोनों किनारों पर बने ऊंचे-ऊंचे मकान, पुलिया, पार्क और चौराहे सब के सब तेज़ी से पीछे छूटते जाते. उसकी लाल चमकती हुई साइकिल अब ऊंचाई पर चढ़ रही होती. वह अपने पैरों को और अधिक तेज़ी से चलाना शुरू कर देती. पर अचानक.... वह देखती, ढेर सारी मोटर साइकिलों पर सवार युवक उसे घेर लेते. सबके हाथों में एक-एक खुले मुंह वाला डिब्बा होता. वह भयभीत हो जाती पर साइकिल को और तेज़ चलाकर बच निकलने का प्रयास करती. उसे ऐसा करते देख सारे युवक विद्रूपता से हंसने लगते और अचानक अट्टहास करते हुए डिब्बों का तेज़ाब उस पर फेंकने लगते.

नहीं...ऽ....ऽ.....ऽ.....!

और वह फिर से बेहोश हो जाती.

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, रामगढ़,
तहसील : नोहर, जिला : हनुमानगढ़ (राज.) ३३५५०४.
फोन : ०१५५५-२४०४०४

शीघ्र प्रकाश्य

"कथाबिंब"

का अगला अंक

अप्रैल-जून २००६ अंक

: कहानीकार :

डॉ. रूपसिंह चंदेल

राजीव सिंह

तेजेंद्र शर्मा

राजेश मलिक

गोवर्धन यादव

: सागर-सीपी : डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी

: आमने-सामने : गोवर्धन यादव

व अन्य सभी नियमित स्तंभ

अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लें.

कहानी

चैटिंग

कुंवर आमोद

क्रिस्टोफर ने जल्दी से नहा कर कपड़े पहने और कंप्यूटर पर आ बैठ. उसने दोस्तों से बातचीत करने के इरादे से कंप्यूटर खोला. देखा तो सोफ़िया का उधर से संदेश आ रहा था. "हैलो ! क्रिस्टोफर, तुम कहां हो ? इतनी देर से संपर्क करने का प्रयास कर रही हूं तुम हो कि जवाब ही नहीं दे रहे हो." क्रिस्टोफर यह पढ़कर ख़ुश हो गया. उसने झट से जवाब भेजा "मैं नहाने गया था. तुम सुनाओ तुम्हारे क्या हाल हैं?" "मैं ठीक हूं", उधर से जवाब आया. इसके बाद दोनों ओर से सवाल-जवाब का लंबा सिलसिला चलता रहा. तीन बजे कहीं जाकर क्रिस्टोफर कंप्यूटर से उठ, खाना खाया और सो गया.

क्रिस्टोफर इज़रायल के 'खिजरा' का रहने वाला अठरह वर्ष का एक नौजवान था. अभी वह स्नातक में प्रथम वर्ष का छात्र था. वह गोरा चिट्टा, ख़ूबसूरत, आकर्षक नौजवान था. उसने अभी एक महीने पहले ही कंप्यूटर पर चैटिंग करना सीखा था. इसी दौरान उसका परिचय सोफ़िया से हुआ. सोफ़िया एक सुंदर, आकर्षक तथा दिलचस्प लड़की थी. वह ग़ाज़ा पट्टी वाले क्षेत्र में रहती थी. यद्धपि इज़रायल तथा फिलिस्तीन में इस क्षेत्र को लेकर अत्यधिक विवाद था पर मित्रता में इन बातों को पीछे कर दिया जाता है. क्रिस्टोफर और सोफ़िया भी मित्रता की इसी डोर में बंध चुके थे. दोनों घंटों तक बैठे रहते. एक दूसरे से बातों का सिलसिला कितना लंबा हो जाता था इसका ख़याल किसी को न था. धीरे-धीरे दोनों खुलते गये. मित्रता कि सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते दोनों आख़िरी छोर तक पहुंच गये. अब उनका मन कंप्यूटर पर चैटिंग से उखड़ने लगा. वे अब आमने-सामने मिलना चाहते थे. क्रिस्टोफर ने एक दिन इस बात का प्रस्ताव किया. सोफ़िया ने थोड़ी बहुत ना-नुकर के पश्चात् उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया. अब प्रश्न समय और स्थान का उठ. इस बारे में पहल सोफ़िया ने की. उसने क्रिस्टोफर को एक सप्ताह बाद 'जराह' नामक क़स्बे में बुलाया. क्रिस्टोफर की दिन-रात की नींद और चैन दोनों हराम हो गये. उसे दिन में भी सपने दिखाई देने लगे. मगर सोफ़िया अत्यंत संतुलित थी. क्रिस्टोफर के मस्तिष्क में न जाने कौन-कौन से विचार घर किये रहते. वह उत्साह और रोमांच से सरोबार रहता. 'सोफ़िया की चाल ऐसी होगी, उसकी हंसी ऐसी होगी, उसके बाल ऐसे होंगे, उसकी अदायें ऐसी होंगी, उसके उठने-बैठने से लेकर छोटी-छोटी बातों के ख़यालात उसके मन को रोमांचित किये रहते. क्रिस्टोफर को सात दिन मानों सात वर्ष/सात युग की तरह कटते नज़र आये. उसने नये कपड़े ख़रीदे. नये जूते ख़रीदे. नया हेयर स्टाइल कराया. उठने, बैठने, चलने तक का पूर्वाभ्यास किया. उसकी तैयारी ऐसे चल रही थी मानो सैनिक युद्ध क्षेत्र का पूर्वाभ्यास कर रहा हो. यद्यपि उसने सोफ़िया का फोटो इंटरनेट पर देखा था किंतु कभी-कभी तस्वीर वाला तस्वीर से अधिक ख़ूबसूरत निकलता है. बस अपने इसी विचार को पाले उसके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे.

आख़िर वह रात भी आयी जो क्रिस्टोफर के लिए क़यामत की रात थी. उसने बहुत प्रयास किया कि सो जाये पर प्रतीक्षारत आंखों में नींद कहां. पर सोफ़िया के बारे में सोचते-सोचते कब उसकी आंख लग गयी उसे पता ही न चला. प्रातः नौ बजे उसकी आंख खुली उसने घड़ी देखी. वह हड़बड़ा कर उठ. यद्यपि अभी देर नहीं हुई थी किंतु उसे आख़िर तैयार भी होना था वह बाथरूम की ओर भागा. ग्यारह बजे तक वह नाश्ता करके तैयार हो गया. सोफ़िया से मिलने का समय सायं पांच बजे का था, पर उसके बेचैन दिल को चैन कहां ! उसने मारे ख़ुशी के खाना नहीं खाया. अगले तीन-चार घंटे उसने बड़ी बेचैनी से काटे. इस बीच उसने सोफ़िया से दो बार बात भी की. सब कुछ ठीक था. 'जराह' का रास्ता एक घंटे का था. यह कस्बा ग़ाजा पट्टी में आता था. आबादी के रंग रूप, आकार तथा जीवन शैली से यह पता लगाना अत्यंत कठिन था कि अमुक व्यक्ति इज़रायली है अथवा फिलस्तीनी.

क्रिस्टोफर ठीक ढ़ाई बजे अपनी कार से रवाना हुआ. उसकी कार हवा से बातें करने लगी. अगर वह थोड़ा और लापरवाह रहता तो या तो स्वयं अथवा कोई अन्य मौत के दरवाजे पर दस्तक दे रहा होता. वह लगभग आधे घंटे में ही जराह पहुंच गया. उसके पास अभी एक घंटा था. वह कार पार्किंग में खड़ी कर के आसपास का जायज़ा लेने के लिये थोड़ी चहल क़दमी करने लगा. उसे यहां के माहौल में कुछ अजीब सी गंध महसूस हुई. फ़िज़ा बदली हुई लगी, पर वह इस समय इस बात पर सोचने को तैयार नहीं था. अंततः थकहार कर वह रेस्टोरेन्ट की मेज पर बैठ गया. ठीक चार बजे सोफ़िया ने प्रवेश किया. क्रिस्टोफर का अनुमान बिलकुल

सही था. सोफ़िया वास्तव में अत्यंत सुंदर थी. सिर से पैर तक ताजमहल थी. साक्षात परी. खूबसूरत इतनी कि हाथ लगाओ तो मैली हो जाये. सोफ़िया ने पूरे हॉल में नजर डाली. उसकी नज़रें अंततः क्रिस्टोफर पर आकर टिक गयीं. क्रिस्टोफर पहले से ही उसकी तरफ देख रहा था. नज़रें मिलते ही मुस्कुराते हुए हिम्मत समेट कर वह आगे बढ़ा. सोफ़िया हल्की सी मुस्कराहट छोड़ते हुए सधे हुए कदमों से उसकी ओर बढ़ी. क्रिस्टोफर की आंखों की चमक बता रही थी. वह हृदय के अंतरतम तक प्रसन्न था. एक मिनिट में दोनों एक दूसरे के सामने थे. आश्चर्य की बात थी कि जहां सोफ़िया अपेक्षाकृत रूप से शांत व स्थिर थी, वही क्रिस्टोफर पर व्यग्रता, बेचैनी तथा घबराहट हावी थी. दोनों ने आंखों ही आंखों में पहचानते हुए एक दूसरे का स्वागत किया तथा साथ-साथ चलते हुए कोने में ख़ाली पड़ी एक मेज़ पर जा कर बैठ गये. आमतौर पर ऐसे अवसरों पर पहल पुरुष करता है, किंतु क्रिस्टोफर के चेहरे पर पसीना देख कर सोफ़िया ने ही बात छेड़ी.

"हैलो; कैसे हो क्रिस्टोफर ? "

"ऑ ! हां बहुत अच्छा........."

'क्या बात है, तुम घबरा क्यों रहे हो ?"

'वो, दरअसल यह मेरे जीवन का पहला अनुभव है. इससे पहले मैं कभी किसी लड़की से नही मिला".

"वो तो मैं भी नहीं मिली मेरा भी पहला अनुभव है."

"असल में तुमसे मिल कर मैं बहुत ख़ुश हूं, इसलिए".

"मैं भी तुमसे मिल कर बहुत ख़ुश हूं."

"अच्छा, ये सुनाओ तुम यहां कब पहुंचे ?"

"पूरा एक घंटा पहले"

"वो क्यों?"

"क्योंकि, मुझे डर लग रहा था कि कहीं कुछ हो न जाये और मुझे देर हो जाये."

"ऐसा क्यों ?"

"यह तो पता नहीं, पर दिल घबरा रहा था और तुमसे मिलने के लिए बैचैन था."

"कहीं यह प्यार तो नहीं !"

"कह नहीं सकता, कि ये क्या है ?"

इसी बीच वेटर आकर ऑर्डर पूछने लगा. दोनों ने अपनी-अपनी पसंद का ऑर्डर दे दिया. बेटर चला गया. इतना समय गुज़रने और सोफ़िया से इतनी बातचीत ने उसमें हिम्मत पैदा कर दी. उसका धैर्य लौटने लगा. अब उसने सोफ़िया से पूछा "तुम कैसी हो ?"

"मैं ठीक हूं. "

"तुम बिल्कुल सही समय पर आयी हो."

"हां, मैं वक़्त की पाबंद हूं."

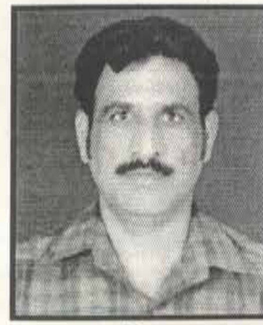

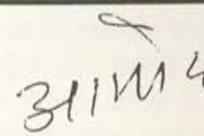

५ जनवरी, १९६८, फ़िरोज़ाबाद, (उ. प्र.); स्नातकोत्तर (अंग्रेजी साहित्य), अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद में डिप्लोमा, पुस्तकालय और सूचना विज्ञान में स्नातक, उर्दू जबां में एडवांस्ड डिप्लोमा.

लेखन : *कादंबिनी, सरिता इत्यादि जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन. 'झरोखे से' कविता तथा ग़ज़ल संग्रह प्रकाशनाधीन. एक कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन.*

विशेष : *संयोजक कादंबिनी क्लब, संसदीय सौध, नयी दिल्ली.*

संप्रति : *राज्य सभा सचिवालय की संपादन और अनुवाद सेवा में कार्यरत*

"बहुत अच्छी बात है."

"शुक्रिया", यह कह कर सोफ़िया मुस्कुराने लगी. क्रिस्टोफर के अंग-अंग में बिजली दौड़ गयी. उसे एक अजीब सी सिहरन महसूस हुई. न जाने क्यों उसकी मुस्कुराहट पर उसका दिल तेज़ी से धड़कने लगा. इतने में वेटर उनका ऑर्डर ले के आ गया. दोनों मुस्कुरा के व्यंजनों का आनंद लेने लगे. अब तक क्रिस्टोफर संयत हो चुका था. अब वह सोफ़िया से नज़रें मिलाकर बात करने लगा. यद्यपि उनके पास बात करने के लिए कोई नया विषय नहीं था. क्योंकि वे कंप्यूटर पर चैटिंग के माध्यम से पहले ही एक दूसरे के बारे में सब कुछ जान चुके थे. परंतु प्रत्यक्ष मुलाक़ात के अपने मायने हैं. आप किसी महल के चित्र को देख कर उसके बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं किंतु उसमें रहने का लुत्फ़ तो उसमें रह कर ही उठा सकते हैं. किसी उद्यान की ख़ूबसूरती का अंदाज़ तो तस्वीर से लग सकता है किंतु उसकी ख़ूबसूरती का अहसास उसमें घूमने पर ही होता है. इसी तरह बात करते-करते उन्हें दो घंटे बीत गये. इस बीच क्रिस्टोफर सोफ़िया के

आकर्षण में बंधता चला गया. बाहर अंधेरा पसरने लगा और रेस्टोरेन्ट में आमदरफ़्त बढ़ गयी. वहीं सोफ़िया ने अचानक क्रिस्टोफर को कुछ देर बाहर पैदल घूमने का प्रस्ताव किया. क्रिस्टोफर ने यंत्रवत तरीक़े से 'हां' कर दी और फिर उसी तरह सोफ़िया के पीछे-पीछे चलने लगा. दोनों चलते-चलते एक एकांत स्थल पर आ गये. क्रिस्टोफर ने मौसम के साथ-साथ उसने सोफ़िया की सुंदरता की भी खुलकर तारीफ़ की तथा अवसर पाकर उसने अपना दिल खोलकर सोफ़िया के सामने रख दिया. सोफ़िया ने मुसकुराते हुए उसकी तारीफ़ का धन्यवाद किया. साथ ही उसने अपने साथ सामाजिक व पारिवारिक बंदिशों की बात का उल्लेख किया. उसने क्रिस्टोफर से स्पष्ट कहा, "देखो क्रिस्टोफर, तुम मुझे ग़लत मत समझना. मैं तुम्हारी भावनाओं की तहे दिल से क़द्र करती हूं. मैं भी तुमसे प्यार करती हूं. तुम एक नेक दिल इन्सान हो. तुम भोले-भाले युवक हो. तुम्हारी दोस्ती एक लड़की के लिए गर्व की बात है. तुम एक ख़्याल रखने वाले तथा जीवन भर साथ देने वाले युवक लगते हो. पर मेरी कुछ मजबूरियां, यानी विवशताएं हैं. जिनके कारण अचानक ही किसी फ़ैसले पर पहुंचना संभव नहीं है. तुम मुझे थोड़ा वक़्त दो. मैं प्रयास करूंगी कि परिस्थितियां हमारे अनुकूल हो जायें." अब क्रिस्टोफर की बारी थी. वह बोला, "तुम किन परिस्थितियों की बात कर रही हो ?"

सोफ़िया ने जवाब दिया, "देखो मैं फिलस्तीन ग़ाज़ा पट्टी क्षेत्र में रहती हूं और इस प्रकार से एक फिलिस्तीनी हूं. तुम एक इज़रायली युवक हो. ये तो तुम जानते हो कि आजकल कैसे हालात चल रहे हैं. भारी तनाव कि स्थिति है. दोनों ओर से तलवारें खिंची हुई हैं."

क्रिस्टोफर माथे पर शिकन लाते हुए बोला, "पर उन सब बातों का हमारे रिश्ते से क्या संबंध है ?"

इस पर सोफ़िया बोली, "संबंध है. हमारी भावनाएं अपने-अपने समाज अपने-अपने देश से जुड़ी हुई है और हम अपने-अपने समाज और अपने-अपने देश से जुड़े हुए है."

"वो तो ठीक है पर मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि तुम इन बातों को अपने निजी संबधों से क्यों जोड़ रही हो ?"

"वो इसलिए क्योंकि इन बातों का असर हमारी ज़िंदगी पर है और आने वाला जीवन भी इन बातों से प्रभावित होता रहेगा."

"उफ़! क्या बात है, कैसी बातें कर रही हो तुम! इन बेमतलब की बातों की क्या प्रासंगिकता है", क्रिस्टोफर थोड़ा सा असंयत होता हुआ बोला.

सोफ़िया क्रिस्टोफर की बातें सुनकर हरकत में आ गयी. इलाका सुनसान था. अंधेरा पसर चुका था. अचानक उसने गरजते हुए कहा, "मि. क्रिस्टोफर हालात ख़राब हैं. तुम्हारा देश हमारा दुश्मन है. तुम्हारे देश ने हमें बरबाद कर दिया है. हमारी बस्तियां

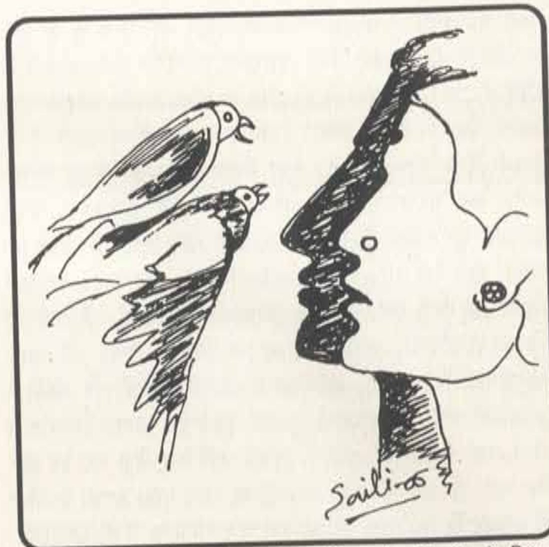

उजाड़ दी हैं. हमारे यहां नरसंहार किया है. स्त्रियों को विधवा तथा बच्चों को अनाथ कर दिया है. क्या क़सूर है आम आदमी का ? क्या बिगाड़ा है हमने तुम्हारा ? एक तो तुमने ज़बरदस्ती हमारी जगह छीन ली, दूसरे हमारे लोगों को मार डाला."यह कहते-कहते सोफ़िया के हाथ में एक पिस्तौल चमकने लगी. सोफ़िया को इस स्थिति में देखकर कोई अंदाज़ा भी नहीं लगा सकता था कि उसने कभी किसी से मोहब्बत जैसी बात भी की होगी.

क्रिस्टोफर ने थूक अटकते हुए जैसे तैसे हिम्मत की, "पर मैंने क्या किया है. मेरी क्या ग़लती है ?"

"तुम्हारी ग़लती यह है कि तुम एक इज़रायली हो और इज़रायल हमारा दुश्मन है. अतः, तुम भी हमारे दुश्मन हुए और हम अपने दुश्मनों को छोड़ते नहीं. अतः, अब तुम भी मरने को तैयार हो जाओ. हां, मरने से पहले यह जान लो कि तुमसे प्यार की बातें महज़ धोखा थीं. यह तुम्हें फंसाने की चाल थी. हां, एक बात और कि मेरा नाम सोफ़िया नहीं, ज़रीना है. किसी इज़रायली को मारना मेरा सबसे बड़ा सपना था, जो आज पूरा हो रह है. इसलिए मुझे माफ़ करना मेरे दोस्त."

क्रिस्टोफर ने कुछ कहने को अभी हाथ उठया ही था और कुछ कहना चाहता था परंतु ज़रीना की पिस्तौल से निकली गोली उसके हाथ को भेदती हुई छाती में जा धंसी. वह हैरत से देखता हुआ कटे पेड़ की तरह ज़मीन पर गिर पड़ा. उसकी आंखें ज़रीना की ओर हैरत से देखते हुए बंद होने लगीं. उनमें तैरते अनेक प्रश्नों का जवाब देने के लिए ज़रीना नहीं रुकी और तेज़ी से एक ओर चलती चली गयी. आज उसे काफ़ी देर हो गयी थी.

जे ५/४१बी, राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली-११० ०२७.
मो. ९८६८४१३८७०

कहानी

भंडारी उदास क्यों थे ?

महावीर रवांल्टा

'कब रिटायर हो रहे हो आनंद बाबू ?' शब्द आनंद के कानों में पड़े थे और आघात उनके हृदय पर हुआ था. लगा जैसे मुंह पर किसी ने घूंसा जड़ा हो और उनकी सेवानिवृत्ति नहीं बल्कि मौत की तारीख़ पूछी जा रही है. असहज हो गये थे आनंद. उनके कदम ठिठके. पीछे मुड़कर देखा भंडारी पीछा करते हुए बिल्कुल उनके पीछे चल रहे थे और अपने हाथ जैसे उनके कंधे पर रखने वाले हों. पलभर को लगा भंडारी ने सचमुच उनके कंधे पर हाथ रख दिया तो वे गिर पड़ेंगे. उनके कंधे भंडारी के हाथों का बोझ नहीं सह पायेंगे. अचरज. जिन कंधों ने आज तक सारे घर की ज़िम्मेदारी ढोई वे भला उनके हाथों के बोझ से कतराने लगे.

'भंडारी जी आप ?' अपने बराबर में भंडारी को पाकर उनके कंठ से निकल पड़ा था.

'हां, दूर से चाल देखकर मुझे लगा तुम्हीं हो.'

अड़सठ के आसपास भंडारी और उनसठ पार आनंद उनके बीच का यह फ़ासला वर्षों से इसी अनुपात में चलता आ रहा है, 'तुम' और 'आप' जैसा. आनंद के लिए भंडारी सदैव 'आप' ही रहे और भंडारी के लिए आनंद 'तुम'. ऐसे ही आपसी संबंध और मर्यादाएं भी प्रगाढ़ रहीं.

क़स्बे के इकलौते राजकीय चिकित्सालय में एक साथ नौकरी करते हुए वे न केवल सरकारी नौकरी की ख़ामियों से आपस में गुंथे रहे अपितु उनका जीवन संघर्ष भी एक-दूसरे से अनदेखा नहीं रहा. लेकिन आठ वर्ष पहले भंडारी सेवानिवृत्त हुए तो उनके मिलने-जुलने का सिलसिला बाधित हुआ. एक दूसरे के घर आना-जाना नहीं हो सका.

आज वर्षों बाद आनंद को देखकर भंडारी के चेहरे पर जो चमक उभरी थी उसे देखकर आनंद दिनभर की अपनी थकान भूल गये थे. थकान क्या, सुबह आठ बजे से इमरजेंसी ड्यूटी कर रहे थे और अब से कुछ देर पहले यानि रात्रि आठ बजे विजेंद्र कैंतुरा ने उन्हें रिलीव किया था. रोज़मर्रा की पंजिकाएं - एम. एल. सी., भर्ती रजिस्टर, सेफ व इमरजेंसी कैबिनेट की चाबी कैंतुरा को थमाकर हैंडबैग उठाये वे चल पड़े थे. किसी महीन पर्त की तरह बाहर रात का धुंधलका फैलता जा रहा था. सड़क के किनारे खंभों पर टंगी ट्यूब लाइटें जल चुकी थीं. दूर से क़स्बे को देखकर लगता जैसे अंधेरे में जुगनू टिमटिमा रहे हों. सड़क पर लोग अपने-अपने गंतव्य तक पहुंचने के लिए उतावले लग रहे थे. वातावरण में फैला यही धुंधलका था जिसके कारण भंडारी आनंद को तत्काल पहचानने के बजाय कुछ देर बाद पहचान पाये थे. यही स्थिति आनंद के साथ रही. पहले बराबर में खड़े भंडारी उन्हें किसी परछाई जैसे लगे, बाद में यही परछाई भंडारी में तब्दील होती गयी.

'ज़िंदगी कैसी कट रही है आनंद बाबू ?' भंडारी ने बातों के छोर को अपने ढंग से पकड़ने की जुगत में समय को कुतरने का प्रयास किया था. सुनकर आनंद को लगा, यह प्रश्न तो उसे भंडारी से करना चाहिए था लेकिन भंडारी ही उसकी कुशलक्षेम पूछ रहे हैं. ऐसे में भंडारी के भीतर का शुभचिंतक उनकी आंखों में तैर गया.

जिले में चली तबादलों की आंधी में सुदूर गांव की डिस्पेंसरी से स्थानांतरित होकर वह क़स्बे के चिकित्सालय में आया था तब वहां कार्यरत फॉर्मेसिस्टों की सूची में उसका नाम अंतिम पायदान पर था. यहां आने पर किसी को उसकी उपस्थिति नाग़वार गुज़री थी तो कुछ उसके आने पर ख़ुश भी थे. उनमें भंडारी भी थे. 'बी. एस.' यानि 'भगतसिंह भंडारी'.

भंडारी, अपने उसूलों के साथ जीवन जीने के पक्षधर. उनका एक उसूल यह भी था कि अगर रिश्वत लिये बग़ैर बात नहीं बनती तो इतना खाओ जितना दाल में नमक ज़रूरी है. इस पर उनकी दलील होती कि कहीं भी जाओ कोई किसी को नहीं छोड़ता. राशन की दुकान हो अथवा बिजली, टेलिफोन या पानी के कनेक्शन की बात और बग़ैर लिये-दिये नहीं बनती. मादरचो... कोई सीधे मुंह बात करने को तैयार नहीं होता, बोलते हुए भंडारी का आक्रोश फूट पड़ा. भंडारी का आक्रोश सिर्फ़ लावे की तरह नहीं फटता था अपितु वह इस पर अमल करता था. डिस्पेंसिंग, ए. आर.वी., इंजेक्शन, पी. जी. एस., इमरजेंसी - महिनेभर में बदलने वाली ड्यूटी के जिस भी काउंटर पर वे होते वहां उसूल जारी रहता. लोगों की जेबें ढीली होती. वार्ड ब्वाय, सफ़ाईकर्मी सभी ख़ुश रहते. चिकित्सक दावतों में सम्मिलित रहते.

'इस महंगाई के ज़माने में ऐसा न करें तो बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, कॉपी-किताब, ट्यूशन के ख़र्चे का बोझ कैसे ढो पायेंगे ? कपड़े लत्ते और उनकी दूसरी ज़रूरतें. आफ्टरऑल ए रिस्पॉन्सिबिलिटी फॉर देयर ब्राइट....फ्यूचर इज ऑलवेज ऑन अवर शोल्डर,' गंभीरतापूर्वक सिगरेट के धुएं के साथ वह बातों के लच्छे छोड़ते तो सभी उनकी बात पर एक मत हो जाते. '....पता है डॉ. त्रिपाठी की वाइफ एक दिन मुझसे बोली थी, इफ यू डोन्ट माइन्ड भंडारी, हमारे बच्चों की पुरानी किताबें पड़ी हैं चाहें तो आपके बच्चे ले सकते हैं, ऐसा कहते हुए उसके चेहरे पर न आत्मीयता थी न सहृदयता बस घमंड था और त्रिपाठी अपने सड़े दांत निपोरते हुए जैसे हंस रहा था मेरी ओर, बास्टर्ड. ख़ुद को रतन टाटा समझता है. अस्पताल से बाहर हज़ारों की प्राईवैट प्रैक्टिस क्या कर लेता है. सूअर का बाल है, स्साले की आंखों में... सेकंड हैंड बुक्स हमारे बच्चे पढ़ेंगे हुंऽऽ. इन्हें पता नहीं कि इनकी तरह हमारी आंखों में भी सपने झिलमिलाते हैं लेकिन इन सपनों के पीछे अपनी शर्म भी बाक़ी बची है अभी. तमाम कंपनियों की दवाओं के सेपल इनकी आलमारियों में बंद मिलेंगे और पब्लिक स्साली 'दवाचोर' हमें कहती है. प्राइवेट प्रैक्टिस हम नहीं करते और नॉन प्रैक्टिस एलाउंस इन्हें मिलता है. हर तरफ़ लूट ही लूट फिर हम ही क्यों पीछे रहें. जब सामने वाले की आंखों से शर्म की हद ग़ायब हो जाये तब हमारी शर्म का क्या मतलब ? भंडारी का बोलना आग उगलना होता. नीम की सी कड़ुवाहट लेकिन अमल करो तो लाभ ही लाभ. यूं भी देखा जाये तब जीवन का निर्माण कड़ुवी सच्चाइयों के साथ सामजंस्य के बाद ही होता है.

आख़िर लोगों के बीच भंडारी फार्मेसिस्ट कम नेता अधिक होने लगे थे. भंडारी में कई लोगों के सपने एक साथ झिलमिलाते. अपनी एसोसिएशन के अध्यक्ष बनकर वे संवर्ग के हितों के लिए संघर्ष करते रहे. जब भी तबादलों की मार पड़ी संघ के पदाधिकारी होने के नाते वे इससे बचते रहे.

ऐसा नहीं कि भंडारी सबकी आंखों के तारे बने रहे. अनेकानेक ऐसे अवसर भी आये जब वे अधिकारियों की आंखों में खटके पर करते क्या हड़ताल, असहयोग जैसे मुंहतोड़ हथियार भंडारी के पास थे फिर उन्हें छेड़ने का साहस कोई क्यों करता. 'एक अदना सा कंपाउंडर हमारे ख़िलाफ़ मोर्चा संभाले!' किसी वरिष्ठ अधिकारी के मुंह से एक बार सिर्फ़ इतना भर फूटा था लेकिन कुछ ही दिनों में भंडारी उनके ऐसे चहेते हो गये कि हर महत्वपूर्ण अवसर पर भंडारी उनके साथ मौजूद रहते. पता चला किसी मंत्री का आशीर्वाद पाने में भंडारी उनके लिए मददग़ार बने.

भंडारी सदैव अनुशासित, विनम्र रहे पर भांड नहीं बने. आदरभाव निभाया पर मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया. न सिद्धांतों के साथ समझौता किया और न ही संवर्ग के हितों के साथ. 'तुम कमाओ तो हमें भी दो, हम कमायें तो तुम्हें भी मिलेगा', यही

१० मई १९६६, उत्तरकाशी जनपद का एक गांव (उत्तरांचल); बी. ए. डी. फार्म

लेखन : *'पगडंडियों के सहारे', 'एक और लड़ाई लड़', 'आप घर या बाप घर', 'अपना अपना आकाश' (उपन्यास), 'समय नहीं ठहरता उसके न होने का दर्द', 'टुकड़ा टुकड़ा यथार्थ' (कहानी संग्रह), 'त्रिशंकु' (लघुकथा संग्रह) प्रकाशित.*

पुरस्कार व सम्मान : *कानपुर की बिगुल संस्था द्वारा सैनिक और उनके परिवेश पर आधारित कहानी लेखन प्रतियोगिता में 'अवरोहण' को द्वितीय पुरस्कार. स्व. मेवाराम शर्मा महान स्मृति साहित्य सम्मान-९७ से सम्मानित. दीपशिखा हरिद्वार द्वारा 'सच के आर-पार' कहानी को अखिल भारतीय स्तर पर प्रथम पुरस्कार. उत्तराखंड शोध संस्थान के रजत जयंती समारोह में (अक्तू.-२०००) हल्द्वानी में सम्मानित. भारतीय संस्कृति एवं साहित्य संस्थान इलाहाबाद द्वारा काव्य भूषण से अलंकृत. स्व. वेद अग्रवाल स्मृति साहित्य सम्मान-२००१ से सम्मानित. 'रवांई मेल' द्वारा साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए सम्मानित. उत्तरकाशी की सृजन संस्था द्वारा (सितंबर २००२) सम्मानित. साहित्य प्रभा टीका सम्मान - २००४ से सम्मानित. 'दोस्त बडोनी, तुम कहां हो' कहानी के लिए 'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार-२००४' प्राप्त.*

प्रिय नारा रहा भंडारी का और जीवन के क़ीमती बसंत जैसे ही नारों की धुरियों पर सरकते गये.

भंडारी जितने जुझारू व बाहर से जितने कठोर दिखते थे उतने ही नरम दिल इंसान भी थे. कर्मचारी नेता होने के नाते वे जितने व्यस्त रहते थे उतने ही गंभीर वे अपनी ड्यूटी को लेकर भी थे. 'मुझे सब बर्दाश्त है बट आई कान्ट टॉलरेट दैट फैलो हू इज एब्सेंट फ्राम हिज ड्यूटी, ऐसे लोग प्रोफेशन के नाम पर ही धब्बा हैं, अपने साथियों से उनका कहना होता. ड्यूटी के प्रति भंडारी जितने फ़िक्रमंद नज़र आते अपने जीवन संवरण के प्रति

उनकी चिंताएं उतनी ही गाढ़ी थीं. घर में दो लड़कियों व लड़कों को पढ़ा लिखाकर ऊंचे औहदे पर देखना उनका सपना था.

भंडारी के सपने साकार हुए.

'बच्चे यूं ही सफल नहीं हो जाते. उनकी सफलता के लिए मां-बाप को भी कठिन परीक्षा से गुज़रना पड़ता है. मुझे ही देखो. चार बजे बच्चों को जगाने के लिए मुझे साढ़े तीन बजे जाग कर चाय तैयार करनी पड़ती थी,' आदतन उनके मुंह से ज़ोरदार ठहाका निकलता और उनका मुंह सर्कस के किसी जोकर की तरह फट पड़ता.

भंडारी चीफ फार्मेसिस्ट के पद से सेवानिवृत्त हुए. उनके विदाई समारोह के दौरान आनंद ने देखा था भंडारी के चेहरे पर प्रसन्नता के बदले कोई उदासी तैर रही थी. सिर के बाल पहले से कहीं अधिक गायब हो गये थे. भौंहे झक सफ़ेद और उन्हीं से मेल खाते बचे-खुचे बाल. दांत सलामत थे. घंटों माईक पर बोलने वाले भंडारी अपनी विदाई के अवसर पर चंद शब्द ही बोल पाये थे वह भी रुंधे गले से. उन्होंने इधर उधर निगाहें फेंकीं तब उसे लगा था उनकी निगाहें किसी को खोज रही हैं. आख़िर में पति-पत्नी सबसे विदा लेकर चलने को हुए तब भी उदासी उनके चेहरे पर व्याप रही थी. उनका विदाई समारोह बहुत दिनों तक आनंद के मन मस्तिष्क में टंगा रहा था इसलिए नहीं कि वह सबसे भव्य आयोजन था. इसलिए भी नहीं कि उसमें लोगों की उपस्थिति सर्वाधिक रही थी बल्कि इसलिए कि उस दिन एक कुशल वक्ता के शब्द अटके हुए थे, गला रुंधा हुआ था. इसलिए कि उस दिन सदैव प्रसन्न दिखने वाले इंसान के चेहरे पर उसने उदासी की कतरनें देखी थीं.

एक दिन में ही चेहरे पर जीवनभर की चिंताएं उतार लाना उसने जीवन में पहली बार किसी को देखा था.

'ताज्जुब है नेगी जी, ये अपने भंडारी को भला क्या हो गया था ?' डॉ. राजेश उपाध्याय भर्राये गले से डॉ. प्रशांत नेगी से पूछ बैठे थे.

'आई डोन्ट नो, बट रियली इट वज अनबिलीवेबुल. वर्षों से भंडारी को देखता आ रहा हूं पर ऐसा पहली बार देखा,' जम्हाई की सी स्थिति में कुर्सी पर पीठ टिकाते हुए घुंघराले बालों से आच्छादित सिर व ऐनक ढकी आंखों वाले डॉ. प्रशांत नेगी बोले थे.

''मैंने भी यही महसूस किया सर, वे अपने में कुछ खोये-खोये से लग रहे थे. उनसे अच्छी चमक तो उनकी वाईफ के चेहरे पर थी, एकदम पहाड़ीपना, किसी पके सेब जैसा,' स्टाफ नर्स रोज़लीन ने भी उस दिन जो महसूस किया था वही उगला था.

'आई थिंक समथिंग इज रॉन्ग विद हिम,' इतने में ही बोल पड़े थे डॉ. वर्मा. बातों का सिलसिला अच्छी ख़ासी बैठक में तब्दील हो गया था. इमरजेंसी के ठीक सामने की लॉननुमा जगह पर आठ-दस कुर्सियों पर काफ़ी लोग जमा हो गये थे. डॉ. वर्मा, डॉ. प्रशांत नेगी, डॉ. उपाध्याय, स्टाफ नर्स रोज़लीन, चंपा, चीफ फार्मेसिस्ट विजेंद्र कैंतुरा, दिनेश जोशी, आनंद रावत. सभी लोग अपने-अपने नज़रिये से खोये से लग रहे थे. भंडारी में हुए इस बदलाव के लिए अलग-अलग स्थितियों को ज़िम्मेदार ठहरा रहे थे पर सच यह था कि भंडारी के चेहरे की उदासी सभी के लिए एक अबूझ पहेली बनी हुई थी. उस दिन के बाद भंडारी व आनंद रावत नदी के जैसे दो किनारे हो गये.

आज वर्षों बाद भी भंडारी से मिलने पर आनंद के मन में फिर वही प्रश्न उगने लगा था कि उस दिन भंडारी के चेहरे पर उपजी उदासी का कारण क्या था.

सड़क पर चलती परछाइयों में भंडारी व आनंद भी शामिल थे. उनकी पदचापें सड़क पर पड़तीं तब लगता उनसे कोई संगीत फूट रहा है. वैसे देखा जाये तो जीवन भी संगीत जैसा ही है तरह-तरह की लय व सुरों से सजा हुआ. थोड़ी देर में रोशनी बांटते खंभे के नीचे वे अपनी-अपनी परछाइयों के साथ खड़े थे.

'आइए, घर चलिए', अपने घर की ओर मुड़ने से पहले ही आनंद ने भंडारी से आग्रह किया था.

'अभी नहीं फिर कभी, नीला मेरी राह देख रही होगी', भंडारी ने प्रतिवाद किया. पर शब्दों में प्रतिवाद नहीं बेबसी झलक रही थी, बाध्यता थी. समय के साथ गुंथी बाध्यता.

'आज बहुत दिनों बाद मिलना हुआ तो एक कप चाय ही........ 'इसके आगे कुछ नहीं फूटा था आनंद के मुंह से.

'चलो जैसी तुम्हारी इच्छा', और फिर भंडारी उनके पीछे हो लिये.

'बच्चे क्या कर रहे हैं ?' बैठक में चाय का पहला घूंट भरने के साथ ही उन्होंने आनंद की ओर प्रश्न उछाला था. बराबर में मालती खड़ी थी. 'आप भी बैठिए', भंडारी का अनुनय नहीं बड़े-बूढ़े का सा आदेश था. मालती भी अपनी चाय लेकर पास में ही बैठ गयी.

'बड़ा बेटा अंग्रेजी में एम. ए. कर रहा है, छोटा पी. एम. टी. की तैयारी में जुटा है शिवानी हाईस्कूल में है'. बच्चों को लेकर उछाले भंडारी के प्रश्न के उत्तर में सिर्फ़ यही सुलभ उत्तर था आनंद के पास. यूं कहें कि उनकी दुनिया ही इतनी सी थी.

'और आपके बच्चे ?' आनंद का औपचारिक प्रश्न था. सुनकर पलभर को वे गंभीर हुए फिर बोले - सब वेल सेटेल्ड हैं, आपको पता ही है. कैलाश सॉफ्टवेयर इंजीनियर होकर अमेरिका में बस गया है, धीरेश नासिक में रहता है. अब तो बेटियां भी नौकरी कर रही हैं. सभी अपनी-अपनी दुनिया में ख़ुश हैं. थोड़ी देर को बच्चों की तरह चहके थे भंडारी. पर आनंद को लगा उनके चहकने में बच्चों की सी निश्चिंतता व मासूमियत नहीं है, इसमें कुछ ओढ़ा हुआ है.

'मतलब आप दोनों अकेले.....?'

'हां ! आनंद, बुढ़ापे में एकाकी होना लगभग तय ही है. तुम्हें पता है हमारी उम्र का एक बड़ा हिस्सा अपनी नौकरी, भविष्य की चिंता, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की जुगत में निकल गया. वे अपने पैरों पर खड़े हुए तब उनके विवाह की चिंता. अब उनके भी बच्चों की चिंता यानि जीवन में सिर्फ़ चिंताएं ही रह गयी हैं हमारे हिस्से,' कहते हुए भंडारी अपने में कुछ बुझ से गये थे.

आनंद ने देखा भंडारी की आंखों के पोर नम हैं.

फिर थोड़ी देर इधर-उधर, दुनियादारी की बातें. चाय का ख़ाली कप मेज़ के हवाले करते हुए उन्होंने जेब से रूमाल निकालकर अपनी ऐनक को पोंछा, फिर उसे आंखों पर चढ़ाते हुए बोले - 'चलता हूं नीला इंतज़ार कर रही होगी, कभी मौक़ा लगे तो घर आओ न, अब तो लगता है जैसे हम अलग-अलग महाद्वीपों के वासी हो गये हैं,' कहते हुए उन्होंने ठहाका लगाया. पलभर को आनंद को लगा वे वर्षों पीछे लौट आये हैं लेकिन इस ठहाके में तब जैसे बेफ़िक्री कहां थी ?

भंडारी चले गये लेकिन उसकी ओर जैसे कोई सवाल सरका गये थे. मालती कप-प्लेट समेटकर रसोई में जा चुकी थी और वे भंडारी को विदा करने के बाद कपड़े बदलकर अपनी रोज़मर्रा की दिनचर्या में जुत गये. हाथ मुंह धोकर तरोताज़ा होना फिर किसी पत्र-पत्रिका को लेकर इत्मीनान से उसमें डूब जाना. पत्र-पत्रिकाओं में वे ऐसे डूब जाते हैं कि आसानी से बाहर नहीं निकल पाते बल्कि परिवारजनों को इन्हें बाहर निकालना पड़ता है.

वे अपनी दुनिया में खोये थे, इस बीच हिमांशु व शिवानी घर में दाख़िल हो चुके थे.

'प्रदीप कहां है ?' उन्होंने पत्रिका के पन्ने उलटते हुए पूछा.

'वह...पापा अपने दोस्त के घर गया है.' शिवानी ने बताया.

'जब भी लौटता हूं वह घर में नहीं होता आख़िर करता क्या है वह इतनी देर तक उनके साथ ?' खीझ पड़े थे पापा.

'अजी बालक है, थोड़ा घूम फिर लेगा तो क्या हर्ज है,' मालती सामने थी.

'तुम्हारी इसी आदत ने बिगाड़ दिया है बच्चों को. अभी से सिंसियर नहीं रहेंगे तो कैसे बनेगा इनका भविष्य. मैं इनकी उम्र का था तब कॉलेज भी जाता था और कॉलेज की फीस जुटाने के लिए मज़दूरी भी करता था.'

'अब लग गये अपने ज़माने की सुनाने ! बच्चे क्या जाने... फिर हम लोग थोड़ी सी सुख-सुविधा अपने बच्चों को दे सकें तो क्या बुरा है, वरना सारी उम्र वे भी अभावों में खटते रहेंगे तो....'

'मैं अभावों में खटने की बात नहीं कर रहा बल्कि पढ़ाई के प्रति गंभीरता की बात कर रहा हूं. बी. ए., एम. ए. करने से क्या फ़ायदा जब थर्ड डीविजन हो. हज़ारों बेरोज़गार घूम रहे हैं. फर्स्ट या गोल्ड मेडेल पायें तो बात भी है... अपने भंडारी जी को नहीं देखा, सभी बच्चे थ्रूऑउट फर्स्ट क्लास रहे और आज नौकरी में हैं. आज भी हमारे स्टाफ में लोग उनका उदाहरण देते हैं.' आनंद धारा प्रवाह बोलते गये फिर बोलते-बोलते एकाएक उन्हें लगने लगा कि भंडारी का उदास चेहरा उनके भीतर समाता जा रहा है.

और उस पूरी रात वे सो नहीं सके. रात का गाढ़ापन उनके भीतर उतरता गया.

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र,
धरपा, बुलंदशहर (उ. प्र.) २०३१३१.
फोन : ०५७३८-२४६११६

लघुकथा

भूख

हीरा लाल मिश्र

जोबा मांडी राजमिस्त्री के नीचे काम करने वाला लेबर था. सबेरे गरम-गरम मांड-भात खाकर गहरी डकार ली और लोटे का पानी गटागट पीकर काम पर निकल पड़ा. पत्नी पुतुल ने जूठन उठायी, थाली मांजी और बीमार बेटी के सिरहाने बैठ उसका सिर दबाने लगी.

'चला गया रे... जोबा, ओ जोबा...' बरामदे में पड़ी अंधी मां की कराह सुनाई पड़ी. - 'दोपहर का चावल घर में नहीं है रे...ओ जोबा.'

'चला गया, चला गया. आयेगा भरपेट पीकर. दारू नहीं पीयेगा तो अन्न कैसे पचेगा ?' पत्नी पुतुल ने ताना मारते हुए कहा.

शाम को ड्राइवर धोना किस्कू ईंट खाली कर ट्रक लेकर गांव पहुंचा. धोना मालिक का ट्रक चलाता था. जोबा की पत्नी घर के बाहर खड़ी थी. उसने उसे कुछ रुपये और शराब की बोतल थमाई और 'आता हूं' कहकर चला गया.

कुछ घंटों के बाद नशे में धुत जोबा लड़खड़ाता घर पहुंचा. - 'कहां गयी रे.... भात दे...'

'जोबा तू आ गया ? दोपहर का भात नहीं बना रे...' अंधी मां कलप कर बोली.

बहुत देर बाद ड्राइवर धोना कोठरी से बाहर निकला. पीछे-पीछे जोबा की पत्नी पुतुल भी बाहर आयी.

जोबा आंगन में चित्त पड़ा था.

'कौन था..?' - आवाज़ सुन जोबा लड़खड़ाती जुबान में बोला.

'चावल ख़रीदने जाती हूं... रात में भात ठूंसना है कि नहीं...?' - पुतुल कलप कर बोली.

'द न्यू ब्लू प्रिंट मेडिकल स्टोर', पीर बाबा मोड़,
पो.- इंदा, खड़गपुर, प. मेदिनीपुर (प. बं.) ७२१ ३०५.

"अपने भीतर लगता था जैसे कुछ चल रहा है !"

महावीर रवांल्टा

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन 'उपेंद्र' और भोला पंडित 'प्रणयी' से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है महावीर रवांल्टा की आत्मरचना.)

आठवीं में पढ़ते हुए हिंदी कविता के जाने माने हस्ताक्षर लीलाधर जगूड़ी तथा जग्गू नौडियाल जी का शिष्य था तब मुझे न कविता की समझ थी और न ही उनके कवि कर्म के बारे में जानता था अलबत्ता हिंदी व अंग्रेजी पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने वाली कविताएं मुझे कंठस्थ थीं. तब मैं सोचता था कवि मरे खपे हुए लोग होते होंगे. आठवीं की परीक्षा मैंने जनपद में सर्वोच्च स्थान से सिर्फ़ एक अंक पीछे रहकर उत्तीर्ण की. राजकीय कीर्ति इंटर कॉलेज उत्तरकाशी में दाख़िला लिया. कॉलेज की वार्षिक पत्रिका निकलती थी 'कीर्ति'. 'कीर्ति' में छपने के लिए कॉलेज के छात्र-छात्राओं से रचनाएं आमंत्रित की गयीं. तब मुझे कविता लिखने की ऐसी धुन सवार हुई कि सारी रात जाग कर एक कविता लिख डाली - "सफलता का शिखर". उसे छपने को दिया. पत्रिका सामने आयी, उसमें मेरी कविता के बदले "सफलता का शिखर" शीर्षक से एक बोध कथा थी. ज़ाहिर है रचना मेरी नहीं थी. यहीं से मन में कोई हूक उठी कि कुछ ऐसा लिखूं जो सचमुच मेरा हो.

इसी दौरान मैं अन्य कुछ पत्रिकाओं के साथ बाल पत्रिका 'पराग' नियमित पढ़ने लगा था और पत्रिका में छपी रचनाएं पढ़कर मुझमें भी लेखन के प्रति रुचि जागने लगी. फिर प्रेमचंद, शिवानी, शरतचंद्र, हिमांशु जोशी, अभिमन्यु अनत, राम कुमार भ्रमर की रचनाएं भी मैंने इसी दौर में पढ़ डालीं. शब्द मुझे आकर्षित करने लगे और पूरा मन बन गया कि मुझे लिखना ही चाहिए. पढ़ने की बात पर बता दूं मैंने इस दौरान जितना भी साहित्य पढ़ा ख़रीदकर पढ़ा. उत्तरकाशी में प्रवेश करते ही सड़क के बायीं ओर रामवीर नाम के युवक का पान का खोखा था जो पत्र-पत्रिकाओं के अलावा साहित्यिक कृतियां भी रखा करता था. यहीं से नगद, उधार जैसा बन पड़ा मैंने पत्रिकाएं एवं पुस्तकें ख़रीदी और पढ़ता रहा. अब कई वर्षों से मैंने रामवीर को नहीं देखा न ही वह खोखा वहां है लेकिन आज भी वह मुझे किसी आत्मीयजन की तरह याद आता है. अगर वह नहीं होता तो न मेरा निजी पुस्तकालय समृद्ध होता और न ही मुझमें लेखन के अंकुर फूटते. 'पराग' में प्रकाशनार्थ भेजी मेरी बाल कहानियों के प्रत्युत्तर में मिले अस्वीकृति भरे कुछ पोस्टकार्ड आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं जिनसे मैं हतोत्साहित नहीं हुआ था लेकिन मेरे लेखन की दिशा में बदलाव ज़रूर आया था. जहां तक छपने की बात है मेरी पहली कविता 'बेरोज़गार' मार्च १९८३ में 'उत्तरांचल' साप्ताहिक में छपी थी.

लघु पत्र-पत्रिकाएं रचनाकार के निर्माण व विकास में अहम भूमिका निभाती हैं. मुझे भी 'जन लहर', 'उत्तरीय आवाज़', 'हिमालय और हम', 'पर्वतवाणी', 'गढ़ रैबार', जैसी इन पत्र-पत्रिकाओं ने क्रियाशील बनाये रखा, उभारा, पहचान दी. यही कारण है कि लघु-पत्र-पत्रिकाओं के साथ मेरा संबंध आज भी अटूट है. उनकी भूमिका के प्रति मैं सदैव आश्वस्त रहा हूं.

अस्सी के दशक में उत्तरकाशी में कविता का अच्छा वातावरण था. 'रसचक्र', 'जनवादी लेखक संघ', 'युवा साहित्य कला संगम', 'रवांई जौनपुर विकास युवा मंच', 'राष्ट्रभाषा सेवा संघ', जैसी संस्थाएं संस्कृति व साहित्य के क्षेत्र में कार्य कर रही थीं. फलतः, कवि व विचार गोष्ठियां राष्ट्रीय पर्वों के अलावा विभिन्न अवसरों पर आयोजित होती रहती थीं जिनमें लोग बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते थे. माघ मेले के अवसर पर जनवरी में होने वाला कवि सम्मेलन सबसे बड़ा काव्य आयोजन होता था जिसमें श्रोताओं को स्थानीय कवियों के साथ ही राष्ट्रीय हस्ताक्षरों को देखने व सुनने का अच्छा अवसर मिल जाता था. इसी मंच पर मुझे रमानाथ अवस्थी, शेरजंग गर्ग, लीलाधर जगूड़ी, कन्हैया लाल नंदन जैसे वरिष्ठ कवियों की उपस्थिति में काव्यपाठ का अवसर मिला था.

मेरी कविताएं सराही गयीं. मुझे बीस रुपये का पारिश्रमिक मिला. जीवन में साहित्य के नाम पर मिलने वाला यह पहला पारिश्रमिक था. ठीक एक वर्ष बाद ऐसे ही कवि सम्मेलन के लिए मुझे पचास रुपये का पारिश्रमिक मिला था जो मेरी कोट की जेब से कहीं गिर पड़ा था और उसे खोना मेरे लिए किसी बहुमूल्य उपहार के खोने जैसा था. 'युवा साहित्य कला संगम' द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'भूख' के प्रवेशांक के 'झांकते अंकुर' स्तंभ में मेरी कविता 'ज़िंदगी' प्रकाशित हुई थी.

उत्तरकाशी ही था जहां रहकर मैंने कहानी एवं कविताओं का एक मिला जुला संकलन 'नव चेतना' तैयार कर लिया था. नागेंद्र नीलांबरम्, राजीव नयन बहुगुणा एवं पर्यावरणविद सुंदर लाल बहुगुणा ने इस पर अपनी सम्मतियां लिखी थीं. इस पांडुलिपि को लेकर मैं राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. गोविंद शर्मा से मिला तब उनका सुझाव था कि अच्छा हो मैं आम लेखन से हटकर रवांई जैसे सांस्कृतिक संपन्न क्षेत्र की संस्कृति, परिवेश व समस्याओं को लेकर सृजन करूं तो वे रचनाएं अधिक प्रामाणिक व प्रभावी होंगी जो हिंदी साहित्य जगत में मेरा स्थान बना सकती हैं. उनकी बात मेरे मन में घर कर गयी. फिलहाल कविता व लेखों के माध्यम से मैं उनके सुझाव पर अमल करने लगा था. 'नव चेतना' का प्रकाशन स्थगित हो गया. उसके प्रकाशन में आने वाला व्यय मेरी सामर्थ्य से बाहर था. कविताएं थोड़ी बहुत लिख लेता था. तभी कुछ ऐसा घटा कि दुगुनी गति से लिखने लगा. हुआ यूं कि एक वरिष्ठ कवि मित्र ने अपने मित्र से मेरे बारे में टिप्पणी कर डाली थी कि लोग दो-दो पंक्तियां लिखकर ख़ुद को तीसमार ख़ां समझने लगते हैं. उनकी यह कटु टिप्पणी उसी मित्र ने मुझे बतायी. सुनकर मुझे दुःख हुआ. मैं दिन रात कविताएं लिखने लगा जिनका प्रकाशन बाद तक होता रहा. अनेकों अब तक अप्रकाशित हैं तो कुछ पुनर्लेखन की मांग करती हैं. पढ़ाई के दौरान मैं कविताएं लिखने लगा था. नोट्स की जगह कविताएं मेरी नोट बुकों में दर्ज होने लगीं. कविताओं से सम्मोहन का मूल्य मुझे चुकाना पड़ा. मैं पढ़ाई में असफल रहा.

हमारी असफलताएं हमें बुरी तरह तोड़ देती हैं या फिर हमारी जीवन की राह को दूसरी ओर मोड़ देती हैं. ऐसा ही मेरे साथ हुआ. ग्रीष्मकालीन अवकाश के दौरान मैंने लिखना शुरू किया - 'अकेला' और 'सफ़र' शीर्षक से दो छोटे उपन्यास महीने भर में ही लिख डाले. इन्हें लिखते हुए मुझे न बहुत अधिक श्रम करना पड़ा न मैं किसी मानसिक यंत्रणा से गुज़रा. बस लिखना आरंभ किया तो लिखता ही गया. पास में न अनुभव था और न परिपक्वता. थोड़ी स्मृतियां, भोगा हुआ यथार्थ, कल्पना और स्वप्न इन्हीं को मिलाकर ये रचनाएं जन्मीं. इन्हें लिखने के बाद बहुत संतोष मिला, लगा मन का कोई बोझ हल्का हो गया. प्रो. गोविंद शर्मा का सुझाव - रवांई क्षेत्र की संस्कृति, परिवेश व समाज इस उपन्यास की ज़मीन बना.

स्मृतियों व भोगे हुए यथार्थ की बात पर सबसे पहले बचपन ही सामने आता है. मां बताती हैं - मेरी अभिरुचि की परीक्षा लेने के लिए हंसिया, क़लम, सिक्के जैसी कई चीज़ें रखी गयी थीं तब मैंने क़लम उठा ली थी. अकेले में मिट्टी से खेलना, मिट्टी का घर, खेत बनाना उनमें फसलें उगाना. शरीर बिल्कुल कमज़ोर, तभी तो नामकरण हुआ था - 'माड़ू' यानि कमज़ोर. दादा जी ने काला कलूटा देखकर 'मोल्या' नाम रखा. पिता जी राजस्व विभाग में भूलेख निरीक्षक थे. पैतृक गांव सरनौल से महरगांव जाने के उनके निर्णय पर बताते हैं मैं मां-बाप के साथ चलने को बिल्कुल राज़ी नहीं हुआ था. मां ने मुझे चंद सिक्के दिये तब मैं चलने को राज़ी हुआ यानि जो काम मां का ममत्व नहीं कर सका उसे चंद सिक्कों ने कर दिखाया. पिता जी मुझे पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित करते रहते. तख़्ती पर मिट्टी डालकर अंगुलियों से लिखना सीखने के बाद मैं 'रिंगाल' की क़लम बनाकर पिता जी के लाये मोटे-मोटे रजिस्टरों पर सुलेख लिखने लगा था. मेरी धुन होती कि कब पहला रजिस्टर पूरा हो और दूसरा मिले. लिखने की इस प्रवृत्ति के कारण आज महसूस करता हूं कि मेरी 'राइटिंग' दूसरों की नज़र में कुछ अच्छी रही तो सिर्फ़ इसलिए कि मेरा अभ्यास वर्षों चला.

बचपन से ही मैं संकोची व शर्मीले स्वभाव का रहा. एकाध मित्र को छोड़कर न किसी से ख़ुलकर मिलता था और न ही बातें करता था. किसी के साथ अपने दुःख सुख नहीं बांट सकता था. अपने भीतर लगता था जैसे कुछ चल रहा है. कह सकता हूं कि मेरा बचपन लुभावना नहीं रहा लेकिन क़लम क्या पकड़ी बोलने का साहस भी स्वयं ही जुट गया. तभी से मानने लगा हूं कि शब्द हमें बहुत बड़ी ताक़त देते हैं, सभ्य बनाते हैं, सांस्कृतिक चेतना से ओत-प्रोत करते हैं और देखा जाय तो शब्द से ही शब्द के साथ हमारे संघर्ष का जैसे सूत्रपात हो जाता है.

अस्सी का ही दशक रहा जिसने न केवल कविता, कहानी अथवा पत्रकारिता में मेरी रुचि को यथार्थ की ज़मीन दी बल्कि पहली बार गांव में पौराणिक नाटकों - 'वीर अभिमन्यु' एवं 'श्रवण कुमार' में अभिनय कर अपनी झिझक को दूर किया. मंच पर खड़े होकर बोलना भी मैंने तभी सीखा. बोलना शुरू किया तो थमा नहीं, अब तक भी नहीं. अब भी कहीं बोलने का अवसर मिलता है तो लगता है कोई छूटा हुआ सूत्र हाथ लगा है या बिछुड़ा हुआ साथी. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रशिक्षु श्रीश डोभाल द्वारा निर्देशित नाट्य प्रस्तुतियां क्या देखीं कि नाटक का भूत सवार हुआ. 'तिलाड़ी कांड' पर आधारित 'मुनारबंदी' लिखकर 'बालपर्व' नाटक के साथ माघ मेला मंच पर इसका मंचन किया. सनक ऐसी कि पहली बार में ही निर्देशन, अभिनय, मंच संचालन का ज़िम्मा अकेले ही उठाया. इसके बाद जो भी अवसर हाथ आये मैंने नहीं गवांये. रुचि का ही प्रतिफल रहा कि 'कला दर्पण' संस्था के तत्कालीन सक्रिय सदस्य के रूप में मेरा नाम आज भी जुड़ा

है. अपने ही लिखे सात नाटकों का मंचन जनपद मुख्यालय से लगभग १२० किमी दूर महरगांव में, गांव के लोगों के साथ कर मैंने नाटक को गांव तक पहुंचाने का जो सुख बटोरा वह आज भी मेरी पूंजी है. 'अभिनय एवं कला की शुरुआत, नये चेहरों के साथ' वितरण के लिए जो प्रचार सामग्री छपी थी उसमें नाटक, कलाकार, निर्देशक, संगीतकार, स्थान व अवसर के उल्लेख से पहले यह स्लोगन लिखा था. आज भी नौकरी के झंझटों से अलग फ़ुर्सत के क्षणों में कुछ करने का अवसर मिले तो मैं लेखन के बाद सिर्फ़ नाटक ही करना चाहूंगा, फिर वह निर्देशन हो अथवा अभिनय. फिलहाल 'भारत रंग महोत्सव-०२' में दिल्ली के कमानी सभागार में मंचित 'बीस सौ बीस' में भूमिका करने के बाद से कुछ नहीं कर पाया हूं. हां, 'सफ़ेद घोड़े का सवार' व 'खुले आकाश का सपना' नाटक ज़रूर प्रकाशन के लिए तैयार हैं.

जनवरी १९८९ में सरकारी नौकरी में आया तब काफ़ी कुछ पीछे छूट गया. समय अपने पीछे अपने निशान छोड़ जाता है तो रचनाधर्मी अपने पीछे रचनाएं. उत्तरकाशी छूटा पर स्मृतियों में बना रहा. स्पेशल पुलिस फोर्स में सेवा के दौरान पत्र-पत्रिकाएं तो बहुत थोड़ी पढ़ पाया लेकिन डाक से मंगाकर साहित्यिक कृतियां पढ़ता रहा. फोर्स की अग्रिम सीमा चौकियों पर रहते हुए भी मैंने लिखना नहीं छोड़ा. कंपनी का 'मेस' हो अथवा 'बंकर' मेरी कविताएं कहीं भी उपजती रहीं. वहां तक काग़ज़ क़लम उपलब्ध कराने का श्रेय मेरे सहकर्मियों को जाता है. मैं आज भी उन्हें आदरपूर्वक याद करना नहीं भूलता. फोर्स के मासिक बुलेटिन में 'सीमा की ओर' शीर्षक से प्रकाशित मेरी कविता के लिए मुझे पुरस्कृत कर सेनानायक लेखक डॉ. गिरिराज शाह ने जैसे मेरी पीठ थपथपाई जिसमें मैंने एक जवान की विधवा की मनोस्थिति का चित्रण किया था. बाद में मुझे स्पेशल पुलिस फोर्स की वार्षिक पत्रिका 'सीमा प्रहरी' के संपादन का दायित्व मिला जिसके लिए मुझे लगभग पंद्रह दिन दिल्ली रहना पड़ा, जहां राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रशिक्षु सुवर्ण रावत के साथ रहकर मैंने रंगकर्म के क्षेत्र में सक्रिय लोगों के संघर्ष को जाना.

एक बार फिर नौकरी के सिलसिले में उत्तरकाशी लौटना हुआ तब वहीं बी. ए. की पढ़ाई के दौरान मैंने 'अकेला' व 'सफ़र' को क्रमबद्ध कर 'पगडंडियों के सहारे' उपन्यास के रूप में परिमार्जित किया. फरवरी १९९२ में विश्व पुस्तक मेले के दौरान उपन्यास प्रकाशित हुआ. 'पगडंडियों के सहारे' पर लोगों की उत्साह भरी प्रतिक्रियाओं का ही असर था कि सप्ताह भर में ही मैंने 'एक और लड़ाई लड़' उपन्यास लिख डाला. उपन्यास पर्वतीय पृष्ठभूमि पर आधारित था और मैं इसे 'पगडंडियों के सहारे' से बेहतर मानता हूं.

हर किसी के जीवन में बनने व बिगड़ने के निश्चित रूप से तीन अवसर आते हैं, फिर मेरा जीवन इससे कैसे अछूता रहता. 'दैनिक ट्रिब्यून' को भेजी मेरी कहानी - 'मां! तुम भी...' को न

केवल 'कथा-कहानी' स्तंभ में स्थान मिला (जनवरी १९९६) अपितु उप-संपादक कथाकार कमलेश भारतीय जी ने कहानी की प्रशंसा करते हुए बेहतर कहानियों के लिए आमंत्रण दिया. मेरे लिए यह पहला अवसर था जब किसी संपादक ने पत्र लिखकर रचना की प्रशंसा के साथ ही नियमित जुड़ने का प्रस्ताव रखा हो. इतना ही नहीं भारतीय जी ने 'संवेद' तथा 'वैचारिक संकलन' पत्रिकाओं के पते भी मुझे दिये. 'संवेद' के लघुकथा विशेषांक में मेरी लघुकथा 'अनाम पापी' को स्थान मिला. मैं उत्साहित हुआ और लघुकथाएं भी लिखने लगा. ऐसे ही 'वैचारिक संकलन' के अगस्त ९७ अंक में 'डिस्पेंसरी' कहानी प्रकाशित हुई. इसके बाद कहानियां लिखते हुए निरंतर आगे बढ़ता रहा. कहानियां भेजने, लौटने व छपने का सिलसिला चलता रहा. आकाशवाणी से कहानियों का प्रसारण हुआ. अनेक साहित्यकारों से हुए छोटे-बड़े संपर्क से मैं उत्साहित होता रहा हूं, जबकि डॉ. 'अरविंद' जैसे संपादक मुझसे बेहतर लिखवाने की फ़िराक में मुझे जैसे निराशा की धुंध से बाहर निकालते रहते हैं.

लेखन को लेकर मेरा सदैव मानना रहा है कि यह क्षेत्र पर्याप्त धैर्य, लगन और निष्ठा का क्षेत्र है. एक रचना की बार-बार वापसी आपको न केवल निराशा की सुरंग में धकेल सकती है अपितु कुंठा की हद तक भी ले जा सकती है. कुंठा इसलिए कि लेखक कह बैठे कि अमुक पत्रिका में छपी अमुक रचना का स्तर मेरी अमुक रचना से बेहतर कहां ? वह छपी और यह वापस. जब से लेखन के क्षेत्र में उतरा हूं धैर्य व सहनशीलता मेरे व्यक्तित्व का हिस्सा हो गये हैं. दिसंबर १९९७ में एक पत्रिका के लिए स्वीकृत मेरी कहानी अप्रैल २००१ में प्रकाशित हो पायी थी. अब आपके मुंह से बरबस ही फूट पड़ेगा - उफ़्फ़ ! इतना इंतज़ार !

'सैनिक और उनका परिवेश' विषय पर कानपुर की 'बिगुल' संस्था द्वारा आयोजित अखिल भारतीय कहानी लेखन प्रतियोगिता में मेरी कहानी 'अवरोहण' को राजेंद्र यादव, विभूति नारायण,

राजेंद्र राव के निर्णायक मंडल द्वारा पुरस्कार के लिए चुना जाना और फिर सम्मानित किया जाना यह मेरे जीवन में पुरस्कार पाने का पहला अवसर था जिसमें मुझे तीन हज़ार रुपये का चेक तथा प्रशस्ति पत्र मिला था. 'सैनिक कहानियां' शीर्षक से इन कहानियों का प्रकाशन विकास पब्लिशिंग हाउस दिल्ली से हुआ. शुरुआत हुई तो फिर छोटे मोटे पुरस्कार मिलते गये. मेरी राय में सही उम्र में मिलने वाला पुरस्कार लेखक के लिए संजीवनी का काम करता है.

सितंबर १९९१ से गांव में अवस्थित प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में कार्य करते हुए अधिकांशतः गांव से ही मुखातिब होता रहा हूं इसलिए मेरी रचनाओं में गांव बहुतायत में मौजूद है. मध्यम दर्जे के इंसान व इंसानी तकलीफ़ों का ख़ुलासा मैंने अपनी रचनाओं में किया है और मुझे इनकार नहीं कि कतिपय रचनाओं में मैं, मेरी कल्पनाएं, स्मृतियां व स्वप्न भी संचरित होना लाज़मी है. अपनी ड्यूटी के उपरांत जो समय मिलता है उसका एक बड़ा हिस्सा लेखन में ही चला जाता है या फिर पढ़ने में. पढ़ने की बात पर - मेरी पत्नी मुझसे अच्छी पाठक हैं. घर में जो भी पत्र-पत्रिकाएं आती हैं उन्हें पढ़कर ही वे चैन लेती हैं. साहित्य पर वह खुली बहस करती है. मेरी रचनाओं की आलोचक है. उनका मेरी पत्नी होना ऐसे में मुझे गर्वित करता है और सचेत भी. प्रत्येक पुरुष की सफलता के पीछे किसी स्त्री का हाथ होने की यहां सहज ही पुष्टि हो जाती है.

जीवन में बहुत संतोषी वृत्ति का व्यक्ति रहा हूं. अब तक साइकिल चलाना भी नहीं सीख सका, लोग सुनते हैं तो हंसते हैं. कर्म ही जीवन का सिद्धांत मैंने अपने पर लागू करने की कोशिश की है. कर्म व समय की पाबंदी के विरुद्ध समझौता किसी भी दशा में मेरे लिए संभव नहीं. पति-पत्नी सीधे सादे जीवन के पक्षधर हैं. भौतिक सुख सुविधाओं से दूर. बदहाल गांव के लोगों के बीच अपना समय बांटना, लिखना पढ़ना हमें सुख की प्रतीति देता है. बचपन से ही जो कुछ स्वयं हासिल किया वही सुखद रहा. घर में किसी का भी साहित्य से दूर-दूर तक का नाता नहीं था. पिता जी मुझे पढ़ा लिखाकर पी. सी. एस. अथवा आई. ए. एस. बनाने का सपना पाले हुए थे. पर मैं था कि...उनका सपना मैं पूरा नहीं कर सका इसका मुझे मलाल है. संतान का मां-बाप की कसौटी पर ख़रा न उतरने की पीड़ा मैंने पिता जी के चेहरे व आंखों में देखी थी. उन्हें देखकर मुझे लगता जैसे वे किसी पराजित सेना के सेनापति हैं, टूटे हुए. लेकिन जीवन के अंतिम दिनों में 'आप घर या बाप घर' व 'उसके न होने का दर्द' पुस्तकें पढ़ते हुए मैंने उनके चेहरे पर एक बाप की ख़ुशी की चमक और विजयी मुस्कान देखी थी वह आज मुझे कुछ-कुछ संतोष देती है और निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है.

रोज़मर्रा के काम मैं जितनी ईमानदारी से करता हूं लेखन को उतनी ही ईमानदारी से अंज़ाम देना चाहता हूं. दिखावटी, दंभी और झूठे लोग मुझे बिल्कुल नहीं सुहाते. ईमानदार व परिश्रमी लोग मेरी कमज़ोरी हैं, बरबस ही उनके क़रीब हो जाता हूं. हमारे अनुभव व संवेदनाएं हमारे लेखन का आधार होती हैं, साथ ही हमारा संघर्ष और परिवेश इसमें शामिल होते हैं. कभी हमारे जीवन या समाज में कुछ घटित होता है और फिर हम उस पर सृजन करते हैं तो कभी ऐसा भी होता है कि जो हम पहले ही लिख चुके होते हैं वह बाद में घटित होता है. एक तरह से कह सकते हैं कि हमारी घटनाएं हमें आईना दिखाती हैं.

दुनिया को फ़तह करने के लाख दावे हम क्यों न करें लेकिन हमारी औक़ात इतनी भर है कि हर पल क्रूर काल के पंजों में फंसे हम बस अपना समय पूरा कर रहे हैं. पंद्रह वर्षों बाद घर में इकलौती बेटी ने क़दम रखा तब लगा सब कुछ मिल गया. मैंने ही सोचकर नाम रखा था - 'रुझान'. बहुत प्यार करता था मैं उसे. उसके साथ अपने को भी भूल जाता था. मुझे लगा था किसी अद्‌भुत रचना का जन्म हुआ. लेकिन हमारी रुझान रचना नहीं हाड़ मांस का पुतला थी. साढ़े तीन माह में ही हमारे कलेजे का वह टुकड़ा सदा के लिए हमसे दूर हो गया. उसका पालना, कपड़े, खिलौने, उपहार वैसे ही धरे रह गये और हम ठगे से. एक पिता के सामने संतान के दिवंगत होने से बड़ी कोई पीड़ा नहीं, सज़ा नहीं. पिता होने का सुख इतने अल्प समय में ध्वस्त हो जायेगा मैंने कभी नहीं सोचा था. भाग्य को अधिक नहीं मानता था, अब मानने लगा हूं कि नियति के हाथों हम कैसे परास्त होते हैं. मां अपनी बेटी के बिछुड़ने की जो पीड़ा भुगत रही है वह मैं अपनी पत्नी में क्षण-प्रतिक्षण देखता रहता हूं.

रुझान चली गयी. घर में मौत का सन्नाटा उभरा. स्मृतियों में झिलमिलाती बच्ची. पर सहज तो होना ही था. 'रुझान की स्मृति में' जन्मी डेढ़ दो दर्जन कविताएं मुझे उसके इतने क़रीब ले गयीं कि लगा हमारी बच्ची यहीं कहीं आसपास है, ज़िंदा है. उसे याद करते हुए मन उदास होता है तो उसके बहाने रची कविताएं बुदबुदाने लगता हूं - न थीं तुम कोई कविता/न कोई कहानी/

न ही किसी उपन्यास का अंश
तुम पापा का प्राण थीं/उनकी सांसों का समूह
क्या पता था पापा को
जिस सृजन की वे/सतत कल्पना कर रहे हैं
वही उन्हें ध्वस्त कर देगा.

आज अपने साथ अपना विगत है, कर्म है. नित आने वाली सुबह और ढलने वाली शाम. इन सबसे ऊपर मेरी सृजनशीलता मुझे जो संतुष्टि देती है उसके सामने दुनिया के सारे सुख जैसे बौने लगते हैं. मन में अनेक रचनाएं कुलबुला रही हैं और उन्हें जब तब किसी न किसी विधा की रचना के रूप में काग़ज़ पर उतरना है, ऐसे में मेरा प्रयास होगा कि वे पहले की मेरी रचनाओं से बेहतर हों.

प्रा. स्वा. केंद्र, धरपा, बुलंदशहर (उ. प्र.)-२०३१३१

'जीवन में जो कुछ है, वही मेरी कविता है !'

- डॉ. कृष्ण बिहारी 'सहल'

('कथाबिंब' के लिए साहित्य साधक एवं निर्भीक पत्रकारिता के सृजनात्मक प्रहरी - डॉ. कृष्ण बिहारी 'सहल' से सुश्री मधु प्रसाद की वातचीत. बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. कृष्ण बिहारी 'सहल' चार दशक से कविता, कहानी, समीक्षा, लोक साहित्य विषयक शोध, एवं संपादन आदि में अपनी विशिष्टता के कारण सुस्थापित हैं. वे एक सफल सृजक, सहृदय रचनाकार एवं निष्ठवान संपादक हैं. उनके अनेक गुणों में उनका सहज, सरल, विनम्र एवं निराभिमान होना सोने पे सुहागा जैसा ही है. वे स्वयं कहते हैं- मैं उर्ध्वचेता हूं/ त्रिशंकू नहीं, सृष्टा हूं/क्योंकि मैं सौंदर्य की अनेक पर्तों के नीचे / जीवन को देखता हूं. - संपादक)

● **डॉ. सहल जी आपसे मेरा परिचय नया होते हुए भी लगभग ५-६ दशक पुराना है. यह सुयोग मुझे मेरे पूज्य पिताजी स्व.डॉ. अमरनाथ जौहरी के कारण प्राप्त हुआ. आपके पूज्य पिताजी स्व. डॉ. कन्हैयालाल 'सहल' जी उनकी स्मृतियों की अनमोल धरोहर के रूप में सदैव उनके ध्यान में रहे. उनसे ही आपके विषय में जानती रही. आज उन दोनों पुण्यात्माओं को प्रणाम करती हुई आपके समक्ष आपके ही विषय में जानने को आतुर हूं. इस सुअवसर का शुभारंभ आपके घर, परिवार, परिवेश, पिलानी से किया जाये. आपके जीवन की पिछली गलियों में आपके साथ चलना चाहूंगी.**

ज़रूर पूछिए. मैं अपने बारे में अवश्य बताऊंगा.

● **आपके पारिवारिक, सांस्कृतिक वातावरण ने आपके अंदर छिपे साहित्यकार को पल्लवित एवं पुष्पित किया. आपके जीवन की कोई अविस्मरणीय घटना जिससे आपके यशस्वी साहित्यकार पिताश्री जुड़े हों और जिसे याद करके आप आज भी पिता की उंगली थाम लेने को आकुल हो उठते हों.**

पिताश्री का स्नेहिल आशीर्वाद मुझे बार-बार याद आता है, उनका अभाव मुझे जीवनभर खलता रहेगा.

● **डॉ. साहब, जब आपसे बात कर रही हूं तो स्वाभाविक है कि इसमें कहीं न कहीं आपके पूज्य पिताजी उपस्थित हैं. उनकी रचनात्मकता के विविध आयाम हैं यथा कवि, समीक्षक, आलोचक आदि. आपको उनके किस रूप ने सबसे अधिक प्रभावित किया है ?**

पिताजी का व्यक्तित्व बहुआयामी था. उनमें गहरी रचनात्मक क्षमता थी. मुझे उनके दो रूपों ने विशेष प्रभावित किया. एक था चिंतक स्वरूप और दूसरा आलोचक का. उनके चिंतन में ही कवि भी समाया हुआ था. वे बहुत बार भावुक भी हो उठते थे. उनका सोचना भावनात्मक स्तर पर चिंतन में बदल जाता था इसलिए वे बहुधा कहते रहते थे कि 'मैं सोच रहा था' या 'सोचता हूं' और फिर उसी विचार को वे कविता में ढाल देते थे. मेरी कविताओं में भी ऐसी चिंतना का प्रभाव आया. नयी कविता में जिस बौद्धिकता का प्रभाव आया, उसे मैंने पिताजी की कविताओं में देखा और प्रभावित हुआ. 'अहं और आत्मबोध' की बहुत-सी कविताओं में यह वैचारिकता स्पष्ट झलकती है. इसी तरह पिताजी के आलोचक रूप ने भी मुझे प्रभावित किया. पिताजी में आलोचना के प्रति गहरे दायित्व का भाव था. परखते समय मानव नियति का संदर्भ उनके लिए महत्वपूर्ण था. मैंने भी समकालीन साहित्य और लोकसाहित्य के संदर्भ में इसी सोच को मद्देनज़र रखकर कुछ लिखा.

● **आज आप इस अवसर पर किन-किन विभूतियों को स्मरणांजलि देना चाहेंगे, जिन्होंने परोक्ष या अपरोक्ष में आपके जीवन में अपनी अमिट छाप छोड़ी है ?**

श्री रामनिवास जाजू, डॉ. जगदीश चंद्र जोशी, डॉ. श्रीकांत जोशी आदि मेरे पिताजी के स्नेहिल छात्रों से मेरा बड़ा गहरा संबंध था. उनके साथ बिताये हुए साहित्यिक क्षण मुझे बराबर स्मरण रहते हैं. वे लोग मज़ाक में कहते भी थे कि यह कृष्ण बिहारी बिलकुल 'सहल' जी की हूबहू कॉपी है. इन लोगों ने मेरे जीवन को काफ़ी प्रभावित किया. मेरी प्रतिभा के भी ये लोग कायल थे.

● **आपकी साहित्यिक यात्रा का शुभारंभ कहां से, कैसे हुआ ? आपकी रचनात्मक प्रवृत्तियां एवं साहित्यिक उपलब्धियां आपके पूज्य पिताजी के लिए असीम संतृप्ति एवं उल्लास का कारण बनी होंगी. आपकी प्रथम अभिव्यक्ति क्या थी गद्य या पद्य और आपके पिताजी की क्या रही, वह टिप्पणी जिसका स्मरण आपकी साहित्यिक रचनात्मकता को सदैव प्रेरित करता रहा ?**

मैंने अपनी सृजन यात्रा की शुरुआत कविताओं से की. पिताजी को लिखकर सुनाता था. वे एक बार मुस्कुराते और फिर समीक्षकीय दृष्टि से कविता की सार्थकता पर अपने विचार प्रकट करते. इससे मुझे प्रोत्साहन मिलता, लेकिन जहां कविता, उन्हें रुचिकर नहीं लगती, तब वे तपाक से कहते 'तुम्हारे सोचने का

लोक और मेरे सोचने का लोक बिलकुल भिन्न-भिन्न है'. लेकिन यह सही है कि सहल सदन में प्राचीन और अर्वाचीन दोनों का संगम है. हां, धीरे-धीरे जब मेरी कविताएं छपने लगीं तो उन्हें ख़ुशी होती थी और कई बार नये सोच के कारण उन्हें वह खटकती भी थी और वे झुंझला कर कह देते थे कि 'तुम अपनी कविता मुझे मत दिखाया करो'.

● **आपने रचनात्मकता के हर आयाम को अपने चिंतन मनन से समृद्ध किया है. आपकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के मूल में क्या है - कविता, कहानी, निबंध, आलोचनात्मक प्रवृत्ति या पत्रकारिता की सहज आतुरता ?**

मैंने शुरू में कविताएं लिखकर अपने भीतर एक उल्लास भी अनुभव किया. अन्य विधाओं में लिखना कहीं आवश्यकता थी, तो कहीं किसी नये चिंतन की तलाश लेकिन वहां भी कविता ही मेरे सामने थी चाहे निराला की 'राम की शक्ति पूजा' हो या 'निहालदे सुलतान'. साहित्यिक पत्रिका संपादन के पीछे साफ़ सुथरी दृष्टि से रचनात्मकता को मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास रहा.

● **आप न केवल हिंदी वरन् राजस्थानी साहित्य की मरू भूमि से भी जुड़े हुए हैं. राजस्थानी माटी की गंध जन्मजात तो है ही. इन दोनों यानि आत्मिक, मानसिक और विभिन्न धरातलों पर अभिव्यक्ति. अपनी राजस्थानी साहित्य साधना पर प्रकाश डालें.**

हिंदी का विद्यार्थी होने एवं पिताजी के कारण हिंदी की गरिमा से जुड़ाव स्वाभाविक था. अतः हिंदी में लिखना प्रारंभ किया, लेकिन पिताजी का राजस्थानी लोक साहित्य का भी गहरा अध्ययन था. पिलानी में सूर्यकरण पारीख जैसे राजस्थानी के मूर्धन्य विद्वान ने राजस्थानी साहित्य के शोध-संपादन और संकलन की परंपरा शुरू की थी. मैं घर पर बराबर राजस्थानी साहित्य की चर्चा भी सुनता तो पिताजी के शोध परक आलेख भी पढ़ता. फिर उनकी चौबोली, बीर सतसई, ऐतिहासिक प्रवाद आदि पुस्तकों के संपादन से प्रेरणा भी मिली.

● **आप एक यशस्वी साहित्यकार पिता की सुयोग्य संतान हैं और उनके सच्चे साहित्यिक उत्तराधिकारी भी. कहीं पिता की विराट छवि के कारण डॉ. कृष्ण बिहारी 'सहल' का व्यक्तित्व छायाग्रस्त हुआ या और अधिक छायादार बना है. बतायें.**

पिताजी के विराट व्यक्तित्व से मुझे प्रेरणा मिली है. उन्होंने मेरे लिए ऐसा कुछ नहीं किया. वे हमेशा कहते - आप ख़ुद करो, लिखो. इस दृष्टि से मैंने जो लिखा वह उनकी रचनात्मकता से भिन्न है, अतः स्वतंत्र है. उनके कारण मेरी रचनात्मकता में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई. यही कारण है कि आज मैं राजस्थान के समकालीन कवियों और कहानीकारों में थोड़ा स्थान बना सका हूं. वह मेरा है, उससे मेरा कद कितना ऊंचा हुआ, यह मेरे मूल्यांकन करने वाले जानते हैं.

● **आपकी कविताएं समय की पीड़ा, कुंठा, घुटन, असंतुलित संवेग को उभारती हैं, कहीं न कहीं अधूरे रह जाने की भावना की ओर इंगित करती हैं. यह कुंठा, यह अवसाद आज की युवा पीढ़ी की थाती बन चुका है. इस कारण आपकी कविताएं युवा चेतना ती स्पोक्समैन एवं प्रहरी लगती हैं. आपकी रचनाओं में उम्र का कोई पड़ाव नहीं. इस 'युवा' बने रहने का कोई कारण तो होगा.**

जैसा आप कहती हैं ऐसा अन्य कई लोगों ने भी कहा है लेकिन मैंने जीवन की निरर्थकता चित्रण नहीं की है. जीवन में जो कुछ है, वही मेरी कविता है. युवा पीढ़ी में इस सच्चाई को देखा भी जा सकता है. मैंने तो कुंठा, अवसाद आदि का चित्रण करते हुए युवा पीढ़ी का संघर्ष दिखाया है. यह सब कुछ है तो इसका प्रतिरोध हो और जब यह निकल जायेगा, तभी जीवन स्वस्थ भी होगा. मैंने अपने में कभी भी अधूरापन महसूस नहीं किया. अगर ऐसा होता तो फिर मेरे जीवन की इन उपलब्धियों की आज चर्चा कैसे होती ?

● **आपका नूतन कहानी संग्रह "सिंफनी" आज की पीढ़ी का तमाम नैराश्य, आत्मबोध हीनता सेक्स संबंधी जटिलता एवं आत्म-पलायन को अच्छी तरह से स्थापित करता है. रूमानियत के साथ यह पैनी नज़र सटीक अभिव्यक्ति कैसे कर पाती है ?**

मेरी कहानियों में अगर सेक्स का चित्रण है तो मेरा सेक्स से कभी परहेज़ रहा नहीं. सेक्स के चित्रण में रूमानियत की अपनी सीमा है क्योंकि वह स्त्री-पुरुष के काम संबंधों से जुड़ी है लेकिन मैंने तो इस चित्रण में संबंधों की पीड़ा, घुटन-टूटन आदि को तलाशा है. नयी पीढ़ी की नियति को आज भी अच्छी तरह टटोलने की ज़रूरत है. पीढ़ी टूटे नहीं, स्थितियों के साथ संघर्ष करे.

● **आपके साथ मेरी यात्रा का अगला पड़ाव है आपकी समीक्षाएं एवं आलोचनात्मक आलेख. किसी भी रचनाकार के लिए गद्य-पद्य दोनों को संभालना सहज नहीं है किंतु आपने जहां क़लम चलायी है, वहां परफेक्शनिस्ट की तरह. फिर भी जानना चाहती हूं कि आपको आत्म संतुष्टि कहां सबसे अधिक मिली है ?**

कुछ बातें कविता में अच्छी लगती हैं तो कई बार मूड गद्य में भी लिखकर मानसिक संतुष्टि अनुभव करता है. इन्हीं स्थितियों में गद्य-पद्य की सर्जना हुई. सर्जन आनंद देता है और इसलिए दोनों से ही आत्मसंतुष्टि है. अपनी कृति अपनी कृति है - छोटी हो या बड़ी. फिर रचना की भी एक सीमा है

● **आपकी यात्रा एक शिक्षक के रूप में प्रारंभ हुई. शिक्षक होने के नाते मानव मन की संवेदनाओं से हर पल आपका सामना होता रहा है. शिक्षक के रूप में आपकी रचनात्मकता कहां तक प्रभावित हुई यानि एक रचनाकार पर शिक्षक का क्या प्रभाव रहा ? क्या प्राचार्य के रूप में उपजी रचनाएं अधिक कठोर धरातल पर रहीं या वहां प्राचार्य पर कवि-मन हावी रहा ?**

सृजन की एक प्रक्रिया है जिसे रचना-प्रक्रिया कहते हैं. जब किसी रचना का निर्माण होता है तब रचनाकार तटस्थ एवं निरपेक्ष हो जाता है इसलिए उस स्थिति में रचनाकार पर न शिक्षक हावी हो पाता है या न कोई अन्य. पद की अपनी मानसिकता होती है. लेकिन सृजन के समय रचनाकार उससे मुक्त होता है संवेदनाओं की सघनता के कारण. इसलिए मेरी रचनाओं में अपनी संवेदनाएं हैं. प्राचार्य होने का कोई प्रभाव रचना में नहीं है और न होना चाहिए.

● **आप मूलतः राजस्थानी माटी की उपज हैं. आपकी रचनाओं में राजस्थानी लोक गाथाएं, कथाएं, बिंब, मिथक आदि का प्रभाव स्वाभाविक ही है. राजस्थानी मन से उपजी रचनाओं में राजस्थान की लोकप्रिय प्रेम गाथाएं आपकी साहित्य साधना में कहां तक सार्थक रहीं ? 'निहालदे सुलतान' पर प्रकाश डालें.**

लोकगाथाओं की दृष्टि से राजस्थान काफ़ी समृद्ध है और मैं पिताजी से इन लोकगाथाओं की चर्चा सुनता रहता था. फिर 'निहालदे सुलतान' लोकगाथा को तो पिताजी ने ही एक सारंगी वादक से सुनकर लिपिबद्ध किया था, फलतः इस प्रेमगाथा का प्रभाव मेरे मन मस्तिष्क पर अधिक था. 'निहालदे सुलतान' प्रेमगाथा एक महाकाव्य कथानक को समाये हुए है और इसमें छोटी-छोटी कई घटनाएं शामिल हैं लेकिन प्रेमगाथाओं में जीवन की उदात्तता के दर्शन होते हैं. प्रेम वासनापूर्ति का माध्यम नहीं अपितु उसमें जीवन के उदात्त भाव छिपे हुए हैं, यथा - त्याग, बलिदान, सर्वस्व अर्पण आदि. प्रेम की कसौटी त्याग है, उसमें शरीर-सुख की आकांक्षा नहीं. यह बिंदु अगर है, तो भी गौण है क्योंकि इसमें प्रेम की महत्ता प्रकट नहीं होती. यह तो स्त्री-पुरुष के निकट होने का एक आकर्षण है जो अनुचित नहीं, लेकिन प्रेम तो कबीर के शब्दों में सिर कटाने का भाव है. 'निहालदे सुलतान' प्रेमकथा में भी यही है. इसलिए वह महान प्रेमगाथा है, कालजयी कृति है. जहां प्रेम के नाम पर मात्र शरीर सुख का लोभ रहता है, वह सच्ची प्रेम कहानी भी नहीं.

● **डॉ. साहब, आपकी साहित्यिक रचनाधर्मिता एवं उपलब्धियों का एक महत्वपूर्ण पड़ाव आपकी पत्रकारिता एवं 'तटस्थ' पत्रिका है. पत्रकारिता की ओर आकर्षण का कारण ? एक सजग पत्रकार समाज के बदलते मूल्यों, सांस्कृतिक विरासत, राजनीतिक मापदंडों एवं जीवन के विभिन्न दृश्यों, विषमताओं एवं जटिलताओं का साक्षी होता है. ऐसे वातावरण में जहां एक ओर प्रचलित धाराओं में बहना होता है वहीं दूसरी ओर अपनी बात दृढ़ता से प्रस्तुत करना भी संपादक का धर्म है. ऐसी परिस्थिति में संपादक कहां, कवि कहां ?**

पत्रकारिता की प्रेरणा भी पिताजी से मिली. वे राजस्थानी की शोध पत्रिका 'मरू-भारती' के संपादक थे. तभी सोचा था मैं भी कभी साहित्यिक पत्रिका निकालूंगा. 'तटस्थ' की साहित्यिक

३० जून १९३९, नवलगढ़ (जि. झुंझुनू); एम. ए. (हिंदी), पीएच.डी. (राजस्थान वि. वि.)

संपादक 'तटस्थ' पत्रिका

यात्रा बड़ी लंबी रही. खट्टे-अनुभव, नयी-पुरानी पीढ़ी का सहयोग और रचनाकारों से आत्मीय संबंध होने के कारण उनके सुख-दुःख से जुड़ना - बस यही पत्रिका की उपलब्धि है. अच्छी रचनाओं और अच्छे प्रतिष्ठित लेखकों का चयन मेरी प्राथमिकता थी. इसी कारण 'तटस्थ' साहित्य जगत में चर्चित रहा. इसके माध्यम से कई लेखक और कई रचनाएं पहली बार प्रकाश में आयीं. मेरा अनुभव है कि किसी साहित्यिक पत्रिका को निकालने में रचनाओं का घाटा नहीं रहता लेकिन व्यक्तिगत पत्रिकाओं में अर्थाभाव बाधक बन जाता है, आज 'तटस्थ' केवल ऑक्सीजन के सहारे चल रहा है. अब आप जानती हैं, ऑक्सीजन की सीमा है. मुझे संतोष है कि मैंने संपादकीय रूप में जो लिखा निर्भीकता के साथ लिखा और उसकी चर्चा राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में हुई है.

● **आपके संपादकीय विचार मंथन करने पर विवश कर देते हैं. संपादक का कर्तव्य निभाते हुए भी आपने कहीं भी संवेगों की सूक्ष्मता एवं तरंगायित हो जाने की सहजता, शब्दों की कोमलता एवं अर्थ के गांभीर्य को बिखरने नहीं दिया. इसके पीछे पिता की विरासत को संभालने का उत्तरदायित्व या स्वयं की साहसिक प्रवृत्ति ?**

मैं इसे साहित्यिक प्रवृत्ति मानता हूं. मुहफट मैं सदा से रहा. जैसा लगा, उसको मुंह पर ही कह दिया इसका नुकसान भी उठाना पड़ा लेकिन मुझे पिताजी की कही बात याद आती है. वे कहा करते थे - अगर अपन नहीं कहेंगे तो कौन कहेगा ! स्पष्टता ख़ुद के भरोसे चलती है - दूसरों के भरोसे नहीं. कुछ मित्र नाराज़ भी हुए तो किसी को 'तटस्थ' की निंदा करने में मज़ा भी आया.

● **'तटस्थ' को तीन दशक से अधिक पूरे हो चुके हैं. आपकी साफ़गोई, निर्भीक अभिव्यक्ति, खेमेवाद से अलग रहना वग़ैरह कहीं आड़े आया ? ऐसी कोई स्थिति जहां संपादक को मात्र संपादक ही रह कर सामना करना पड़ा हो.**

आपने सही कहा. मैंने भी आपके प्रश्न पूछने से पहले ही अपनी आदत बता दी. 'तटस्थ' को मैंने न प्रतिबद्ध पत्र बनाया

तो न किसी खेमे से जोड़ा. मेरा विचार है कि ऐसा करने से पत्रिका सीमित पाठकों की हो जाती है फिर हम जो कुछ देना चाहते हैं वह तो साहित्य से जुड़ा हुआ है. मैंने संपादक के रूप में तटस्थ रहकर ही अपना कर्त्तव्य निभाया है.

● **आपने जीवन को क्षण-क्षण धागे में पिरोकर 'मौसम की पांडुलिपि' तैयार की है. आप निरंतर शाश्वत मूल्यों की अलख जगाये रहने की चेष्टा करते रहे हैं. आज की परिस्थिति में पत्रकारिता कहां तक सार्थक एवं उपयोगी है. बतायें, क्योंकि इस कठिन दौर में किसी भी साहित्यिक पत्रिका का अबाध प्रकाशन - ३३-३४ वर्षों तक बने रहना - मामूली बात नहीं है.**

पत्रकारिता का महत्व तो आज भी है, आगे भी रहेगा यह बात और है कि मैं या आप पत्रिका निकाल पाते हैं या नहीं, इतना अवश्य है कि ३३-३४ वर्ष तक निरंतर रूप में किसी पत्रिका को निकालना ज़रूर हर तरह से कष्ट साध्य है. ३३-३४ वर्षों तक 'तटस्थ' निकाला है तो उसकी भी एक कहानी तो है ही.

● **आपकी हाइकू रचनाएं भी काफ़ी चर्चित एवं प्रशंसित रही हैं, हालांकि हाइकू संग्रह अभी नहीं आया है. कृपया हाइकू पर कुछ विचार रखें.**

हाइकू के बारे में फिर कभी विस्तार से चर्चा करना चाहूंगा क्योंकि यह भी भारत में अपने आप में एक अलग ढंग की विधा है. इसके लिए काफ़ी लंबा समय चाहिए ताकि विस्तृत वर्णन किया जा सके.

● **आज का युवा वर्ग जहां दिशाएं तलाशता है, वहीं नैराश्य की स्थिति से निपटने में असमर्थ है. ऐसी युवा पीढ़ी के नाम कोई संदेश - एक पत्रकार के रूप में, एक साहित्यकार के रूप में ?**

निराशा क्षणिक है. युवा पीढ़ी की महत्वाकांक्षा बहुत है और होनी भी चाहिए लेकिन उसके लिए संघर्ष आवश्यक है. केवल निराश होकर बैठ जाना उचित नहीं है. संघर्ष सबने किया है और जिसने संघर्ष से पाया है, उसका महत्व है.

● **जीवन ने जहां आपको बहुत कुछ दिया है, वहीं लिया भी है. फिर भी आप तटस्थ दृष्टा की भांति समय पर निगाह रखे, अपनी जीवंतता बनाये हुए हैं इस ''युवा'' डॉ. सहल का क्या जीवन दर्शन है ?**

लेना-देना तो चलता रहता है. पिताजी 'प्रसाद' के नियतिवाद से प्रभावित थे. उनका कहना था कि प्रयत्न करो और करते रहो. जितना प्राप्त होना है वह प्राप्त हो जायेगा इसलिए निराश नहीं होना चाहिए. मैंने कभी निराशा का अनुभव ही नहीं किया. क्षणिक निराशा अलग है, आपकी अपनी संवेदना भी जागृत है. कुछ भी अनुभव से जो चला जाये ऐसा नहीं होता. युवा से मेरा तात्पर्य तो इतना ही है कि जो निराश नहीं वही युवा है, सक्रिय है, संघर्षशील है. निराश होने का मतलब खोना और युवा को तो प्राप्त करना है, प्राप्त करते रहना उसके जीवन का लक्ष्य है. मैं तो इसी रूप में सोचता हूं और अपना काम करता हूं.

● **एक आदर्श शिक्षक, समर्थ समालोचक, यशस्वी साहित्यकार का युवा पीढ़ी को पत्रकारिता की चुनौतियों एवं ख़तरों के प्रति क्या कहना है ?**

अब पत्रकारिता सहज नहीं है. लिखना अलग है लेकिन दूसरों के लिखे हुए को पाठकों तक पहुंचाना, यह सरल नहीं. इसके लिए संसाधनों की आवश्यकता है - अगर ऐसा कोई कर लेता है तो वह सफल हो जाता है, अन्यथा नहीं.

● **डॉ. साहब, अनंत यात्रा के अनंत पड़ाव. आपके साथ इस यात्रा के क्षणों की गांठ लगा ली है. फिर कभी इन पलों को उलटने-पलटने का सुयोग मिलेगा. आपसे विदा लेती हूं क्योंकि समय कबसे द्वार पर खड़ा है - जाने को. राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की आपके लिए लिखी इन पंक्तियों के साथ -**

''आप जिज्ञासा, जीवट और लगन के आदमी हैं. आप साहित्य में गहरी रेखाएं बनायेंगे - ऐसा मुझे लगता है. भगवान आपके मनोरथों को पूर्ण करें.''

आपकी शुभकामनाएं स्वीकारता हूं. हमारे रचना कर्म पर अगर कोई थोड़ा भी एकात्मक रूप में लिखता है तो यह हमारे लिए सबसे बड़ी उपलब्धि है.

विवेकानंद विला,
पुलिस लाइंस के पीछे, सीकर (राज.) ३३२ ००१

सुश्री मधु प्रसाद : ९, गोकुलधाम सोसायटी,
कलोल-महेसाणा हाईवे, चांदखेडा, अहमदाबाद-३८२४२४.

ग़ज़ल

✍ सतीश गुप्ता

मरते हैं बेचारे लोग सच के झूठे नारे लोग ।
किस्मत से हैं हारे लोग झंडे और नज़ारे लोग ।।
सोने के पिंजरे के अंदर जब से हैं ये क़ैद हुए ।
सोते दुनिया के नक्शे पर अपने पंख पसारे लोग ।।
आस्तीन में रहते थे जो सांप संपोले जंगल के ।
अब तो रहते हैं घर-घर में सांपों के रखवारे लोग ।।
बस्ती-बस्ती गांवों-गांवों जंगल के क़ानून चले ।
अपने ही घर ग़ैरों जैसे रहते हैं बंजारे लोग ।।
भूखा पेट निगाहों को भी सपने में दिखती रोटी ।
अजब चलन है इस नगरी का फिरते मारे-मारे लोग ।।
हर चेहरे पर यहां मुखौटा और नज़र में खजुराहो ।
तन ढकते हैं लेकिन मन से नंगे और उघारे लोग ।।
सूरज के संग निकल पड़े जो देर रात घर लौट सके ।
हारे थके अजनबी दिन से सो जाते मन मारे लोग ।।

के-२२१, यशोदा नगर, कानपुर-२०८ ०११

यह नया लिबास "तन्या" ने ख़ुद पहना...

प्रबोध कुमार गोविल

तन्या को नौ वर्ष की आयु में घर से हज़ारों किलोमीटर दूर नितांत अजनबी माहौल में एक अपरिचित संस्कृति वाले राज्य राजस्थान में अपनी पढ़ाई के लिए आना पड़ा. भाषा, पहनावा, खानपान सब अलग.

हिंदी से बस इतना ही संबंध, कि उसने अपने शहर में एक-एक सप्ताह के लिए कभी लगी दो हिंदी फिल्में थियेटर में जाकर देखी थीं.

हॉस्टल में रहकर पढ़ाई करने का मक़सद यह नहीं था कि वह बहुत मेधावी थी, या घरवाले उसे कोई उच्च स्तर की शिक्षा दिलाना चाहते थे. केवल एकमात्र यही कारण था कि घर में मां या कोई और स्त्री नहीं थी. पिता को व्यवसाय के सिलसिले में देश-विदेश घूमना पड़ता था. ऐसे में दो सगे और एक चचेरा भाई तो वहीं, देश की सीमा से लगे छोटे से क़स्बे में अपनी पढ़ाई करते रहे, उसे एक महिला संस्थान के सुरक्षित माहौल में रखने की ग़रज़ से राजस्थान में भेज दिया गया.

ये सब तीस वर्ष पुरानी बातें हैं. आज वह उन गिनी-चुनी संभ्रात महिलाओं में से एक है जो देश के पूर्वोत्तर राज्यों में हिंदी के कई बड़े-बड़े पदों पर काम कर चुकी हैं. हिंदी साहित्य में भी उसका नाम है. उसके द्वारा स्थापित किये गये विद्यालय में हिंदी के पठन-पाठन की बेहतरीन व्यवस्था उसने करायी. किंतु अब वह हमेशा के लिए अपने पति के साथ कनाडा में बस चुकी है. वह एक पंजाबी परिवार की बहू है लेकिन अपनी अंतरंग सहेली "हिंदी" के कारण वह ससुराल में घुलमिल सकी. दो-चार वर्ष में एक बार उसका भारत आना हो पाता है. प्रस्तुत है "तन्या" (बचपन का नाम, अब तो नाम भी अपनी मर्ज़ी का न रहा, इसी से पुरानी पहचान से कोई मोह-ममता बाक़ी नहीं है) से प्रबोध कुमार गोविल की "कथाबिंब" के लिए विशेष बातचीत -

● **आपने बताया था कि हिंदी और साहित्य से कभी आपका संबंध बहुत गहरा रहा था. दो उपन्यास और चौंतीस कविताओं के साथ-साथ आपने बारह कहानियां भी लिखीं और सबसे बढ़कर तो यह, कि आपने स्वयं एक विस्तृत कैनवस वाले सशक्त उपन्यास का सा जीवन जिया तो फिर अब ऐसा कैसे कह पाती हैं कि मेरा संबंध साहित्य से 'रहा था' अब नहीं है. सोचिए, यदि किसी औरत ने बीस साल पहले किसी बच्चे को जन्म दिया था और बाद में अन्यान्य कारणों से वह परवरिश नहीं कर सकी, तो भी उसे यह कहने का हक़ कैसे मिलता है कि उसका मातृत्व से कोई संबंध नहीं रहा ?**

प्रबोध जी, मैं रो दूंगी !

● **बहुत सारे रो रहे हैं, फिर भी चाहते हैं कि उनके आंसुओं को मोती समझा जाये. मैं तो आपसे केवल यह पूछ रहा हूं कि 'साहित्यकार' का साहित्यकार न होना कैसा होता है. कैसे हो गया ? और अब कैसे हो पाता है ?**

अगर किसी मकड़ी से कहेंगे कि अपने चारों तरफ से जाला हटा फेंक, तो वह गिर नहीं पड़ेगी ?

● **जहां तक मुझे याद है हम अपने स्कूली दिनों में वह उदाहरण मकड़ी का ही तो दिया करते थे न, कि गिरी, फिर चढ़ी, फिर गिरी...और आखिर कामयाब हुई ?**

जीवन पेंडुलम नहीं होता, कि हम इधर से उधर बेख़ौफ़ आ-जा सकें. यह उदाहरणों में ही हो पाता है. जीवन में ऐसी सुविधा होती तो...

● **होती तो ?**

मैं अपनी कहानी 'न मनसा न वाचा' फिर से लिखती.

● **क्या था इसमें ? क्या आप हमें पढ़ने के लिए दे सकती हैं.**

यह एक ऐसी बच्ची की कहानी है जिसका पिता अति व्यस्त था और मां थी नहीं. शहर से दूर एक फार्महाउस-नुमा मकान. वह बच्ची की देखभाल के लिए एक बूढ़े को रखता है जो उसका अत्यंत विश्वासपात्र है. बच्ची दिन के कुछ घंटे अपनी शहर से आने वाली स्कूल बस से पढ़ने जाती है बाकी सारा दिन उस लंबे चौड़े अहाते में उससे बात करने वाला, उसके राज़ बांटने वाला या उसके साथ खेलने वाला वहां कोई नहीं है. केवल वही बूढ़ा उसका सर्वकालिक संरक्षक है जो दिन के अधिकांश समय घर के कामकाज़, रसोई, बग़ीचे और छोटे-मोटे कामों में व्यस्त रहता है. बच्ची के कारण वहां किसी भी बाहरी आदमी के आने की सख़्त मनाही है. कमोबेश किसी जेल की चारदिवारी की भांति एक बड़े लोहे के दरवाज़े से वह परिसर बंद रहता है. बच्ची को दीवारों के वे हिस्से अच्छी तरह से याद हैं जहां से सूरज उगता है, जहां ढलता है. अपने पिता से उसका मिलना हो पाता है, कई महीनों में, केवल एकाध दिन के लिए. मेरी कोई कविता या कहानी यहां मेरे पास नहीं है.

● **फिर, इस कहानी से क्या कहना चाहा आपने ?**

यही, कि उस बच्ची के पास कहने के लिए कुछ नहीं है.

को दीवारों के वे हिस्से अच्छी तरह से याद हैं जहां से सूरज उगता है, जहां ढलता है. अपने पिता से उसका मिलना हो पाता है, कई महीनों में, केवल एकाध दिन के लिए. मेरी कोई कविता या कहानी यहां मेरे पास नहीं है.

● **फिर, इस कहानी से क्या कहना चाहा आपने ?**

यही, कि उस बच्ची के पास कहने के लिए कुछ नहीं है.

● **अंत क्या है ?**

अंतहीन ! बच्ची कुछ कहने की इच्छा ही नहीं रखती, हां, इस इंतज़ार में अवश्य है कि उसे कुछ सुनाई दे.

● **इस तरह की कहानी कैसे बनती है ? मेरा मतलब कोई पैटर्न, प्रक्रिया या ऊहापोह तो होगी जो पिंजरे में बंद इंसान के बाबत सोच का कोई रंध्र नहीं सूराख बन जाने के लिए रचना हो ?**

मुझे लगता था कि सावन में दिखने वाले वेल्वेट से रंग के लाल कीड़े की तरह वह बच्ची मेरी हथेली पर रेंगती है. मेरी, अर्थात मेरी कहानी की हथेली पर. उसके रेंगने से हल्की गुदगुदी और सुरसुरी ही महसूस करने और उसमें खोये रहने की बात है बस वह कहां जायेगी, गिर पड़ेगी यह कुछ नहीं पता. हां, निश्चित ही वह हथेली पर काटेगी नहीं.

● **अब आप सर्विस कर रही हैं ?**

उस तरह मैं किसी मस्टर-रोल पर नाम लिखवा कर कमा नहीं रही हूं. लेकिन यदि सेवा का मतलब काम से है तो करती हूं. कमाती भी हूं.

● **आपके पति इस 'आपकी कमाई' का स्वागत कैसे करते हैं ?**

बहुत भाव नहीं देते. मगर कभी उन्होंने इसका अपमान भी नहीं किया है.

● **आपके पति कैसे हैं ? उनका मन यदि भीतर से जानती हैं तो कभी उस पर लिखने की क्यों नहीं सोचतीं ?**

पति के मन से ज़्यादा तो अपने ही को पेचीदा पाती हूं. लेकिन अब दो संस्कृतियों के बीच फंस चुकी हूं. एक मैं ही तो नहीं हूं जो दोनों माहौलों में अपने को स्थापित कर सकूंगी. फिर हिंदी में लिखने से वह जिस क्षेत्र में पढ़ा जायेगा उस क्षेत्र से तो मुझे कुछ नहीं कहना. अंग्रेजी में लिखूं तो जिस तबके में पढ़ा जायेगा उसे कुछ नहीं सुनना. कोई फ़र्क भी नहीं पड़ेगा.

● **क्या इतना अंतर देखती हैं हिंदी और अंग्रेजी साहित्य के पाठकों में. क्या इस बात के कोई मानी नहीं रहे कि साहित्य किसी भाषा या देश या काल की सीमा नहीं मानता ?**

ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं. और अब तो हम सब जिस समय के साक्षी हैं वह सुविधा और सुखों का समय है. आप मरें, देखिए सुखी होने वाले मिल जायेंगे.

प्रेमचंद की याद में

प्रबोध कुमार गोविल

सो
ये मोटी ज़िल्द में बंधे कोश
उपहार ही उपहार
इसमें हैं दो लाख शब्द
इसमें दो हजार मुहावरे
इसमें दो सौ व्याख्याएं
इसमें....
इनमें से कहीं से भी
कोई भी शब्द चुन लो
कोई भी उक्ति ले लो
कोई भी भाव छांट लो
कहीं भी बैठें
कैसे भी गायें
किसी को भी सुनायें
किसी को सुनें
किसी को चुनें
मनायें पैदा होने का दिन
जयंती मनायें !

● **क्रमाल है, आपने तो फंसा दिया 'सुविधा और सुख का समय' कह कर मौज़ूदा दौर को कोस रही हैं. इसे नकारात्मक भी नहीं कहा जा सकता ?**

जब आप इतनी बात करते हैं तो मुझे लगता है किसी ने झाड़न लेकर गर्द हटा दी. शायद ऐसा होता रहे तो मैं फिर लिखने भी लगूं.

● **अच्छा ये लीजिए, 'कथाबिंब' का नया अंक आया है. इसे पढ़िए. अपने साथ कनाडा ले जाइए. कुछ भी नया लिखें तो भेजिए ?**

(वे बताती हैं कि जाते ही उनके पते में परिवर्तन होने वाला है. नया पता वे ख़ुद सूचित करेंगी.)

६ विवेकानंद आवास,
वनस्थली विद्यापीठ (राज.) ३०४०२२

लेखकों निवेदन

क्योंकि **'कथाबिंब'** एक त्रैमासिक पत्रिका है इसलिए कृपया कूरियर के माध्यम से प्रकाशनार्थ रचनाएं या समीक्षा के लिए पुस्तकें न भेजें. प्रकाशनार्थ रचनाएं सामान्य डाक से ही भेजें. **-सं.**

पुस्तक समीक्षा

कविता - तीसरी दुनिया के लिए

✍ नीलमेंदु सागर

कृति : तीसरी दुनिया के लिए : डॉ. **वरूण कुमार तिवारी**, **प्रकाशक** : मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली-११००९२. **मूल्य** : ५०/- रु.

'तीसरी दुनिया के लिए' संग्रह की रचनाएं मुक्तछंद में हैं. कविता निर्लय नहीं हो सकती, इसीलिए वह छंदमुक्त भी नहीं हो सकती. लय और छंद कविता के अविभाज्य एवं अनिवार्य तत्व हैं. अंतर्लय के अभाव में ही गद्यस्वरूपा रचनाएं छंदमुक्त हो जाती हैं, वे मुक्तछंद नहीं बन पातीं. यह कहते हुए सुख और संतोष हो रहा है कि समीक्ष्य संग्रह क़ी अधिकांश रचनाएं लयज मुक्तछंद की दिलछू कविताएं हैं और सच्ची कविता की यही पहचान भी है. वह दिल को पहले छूती है और दिमाग को बाद में प्रभावित करती है. ऐसा इसलिए होता है कि कविता कवि की करामाती बुद्धि से बुना हुआ वैचारिक ताना-बाना मात्र नहीं है, कविता होने के लिए उसमें भरपूर इंद्रियबोधकता चाहिए. 'तीसरी दुनिया के लिए' की कविताएं इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, यथा :- 'हर शाम/बंद हो जाता है/लाक्षागृह का द्वार/जब शहर के लोगों को/कोई सुरक्षा नहीं मिलती/मिलती है/केवल एक बारूदी सुरंग.'

समीक्ष्य संग्रह की कविताएं साम्राज्यवाद की विद्रूपताओं को भोगने के लिए अभिशप्त तीसरी दुनिया के लोगों में व्याप्त अभाव, निराशा, असंतोष तथा उसके भीतर से उत्पन्न उनका अस्तित्व-बोध, संघर्षशीलता, आशा-आकांक्षा, आत्म-विश्वास, ग्राम्य मोह, शहरी मृगमरीचिका, आदि को बड़ी बारीकी से चित्राभिव्यक्त करती हैं.

दिग्भ्रमित, शिकार, श्मशान, आख़िर कब तक आदि कविताएं भय-आतंक और हादसा के लिए, मन-यायावर, सन्नाटे का स्वर, इस जंगल होते शहर में, लक्खन भाई, एक बारूदी सुरंग आदि ग्राम्य बिंब और ममत्व के लिए, आख़िर किसलिए, इस अज़गर संस्कृति में, इत्यादि कविताएं शहरी मृग-मरीचिका एवं दिशाभ्रम के लिए, पाब्लो नेरूदा के लिए, ताकि ठहरे हुए क़दम, एक कवि की पूरी कविता, बच्चे कहां रहते हैं व्यक्तित्व-बिंबन के लिए, एकला चलो रे, एवं युद्धरत आत्मसंघर्ष के लिए, शेर-सांप-आदमी और आख़िर किसलिए आदमी की प्रकृति और विकृति के लिए, तथा एक मुट्ठी क्षण निंजी प्रेम विशेष रूप से पठनीय कविताएं हैं.

देशकाल का रूपांकन जीवन-आयाम, छत की शहतीर, लड़की आदि कविताओं में अच्छी तरह से हुआ है. कहने का तात्पर्य की 'तीसरी दुनिया के लिए' की अधिकांश रचनाएं सही अर्थ में कविता हैं. उनमें भाव और शिल्प का द्वैत प्रतीति भर है, वास्तविक नहीं. 'गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न', वाली स्थिति की ओर अग्रसर हुई संग्रह की अधिकांश कविताएं कवि के उज्जवल भविष्य का विश्वास दिलाती है.

संग्रह में कुछ कमज़ोर कविताएं भी हैं, यथा मुर्गे की टांग, शेर-सांप-आदमी, क्यों है बुरी यह दुनिया, आसान नहीं है फिर भी आदि. न्यूनाधिक रूप में इन सबमें अभिधात्मक खुलापन, उपदेशात्मक वक्तव्य एवं गद्यात्मक स्थूलता का अतिभाव है तथा आंतरिक लय का अभाव.

निःसंदेह समीक्ष्य काव्य-पुस्तक (तीसरी दुनिया के लिए) का महत्व अधिगृहीत विषय-वस्तु के लिए उतना नहीं है जितना कवि की उर्जस्वल भाषा की अभिव्यंजना शक्ति के लिए. इसीलिए समीक्ष्य कविताओं का शिल्प किसी भी स्तर पर कृत्रिम नहीं दिखता. यों कविता क्या है और क्या नहीं है इस बारे में कवि की अपना सोच है जो 'जीवित रहेगी कविता' कविता में खुलकर सामने आया है. परंतु कवि द्वारा कविता की दी गयी पहचान मूलतः जीवन-जगत के भावाभाव पर आधारित है. यह स्वाभाविक है, क्योंकि वह मानवता का खुलेआम पक्षधर है. कविता की सही पहचान कवि नहीं कविता स्वयं देती है. तभी पता चलता है कि वह (कविता) कवि के बद्धमूल सोच के दायरे से बाहर खड़ी मुस्कुराती प्रतीत होती है. उल्लिखित कविता की अंतिम पंक्तियां इसके सबल प्रमाण हैं "भयावह दिनों में/जितनी भी आशाएं होती हैं/जितने भी संघर्ष होते हैं/सियाह रातों में/जितने भी/सितारे चमकते हैं/सबों मैं जीवित रहती है कविता/और प्रकाश के सीने पर/पानी से चित्रित/सप्तवर्णी इंद्रधनुष में/जीवित रहेगी कविता/हमेशा जीवित रहेगी कविता."

इन पंक्तियों में जो सत्य उद्‌भासित है वह 'करोड़ों सूर्य से अधिक प्रखर' कवि-कल्पित सत्य हो न हो, परंतु वह शिव-सौंदर्य संबलित कविता का हृदय-ग्राह्य सत्य अवश्य है, जो भाषा-शिल्प के निर्मल दर्पण में ही बिंबित किया जा सकता है. ऐसी सत्योपलब्धि कवि की जानकारी में भी हो सकती है और अनजाने भी. परंतु यह कवि की प्रतिभा, जीवनानुभूति और उसकी शब्द-साधना के संयोग से ही संभव है. कविता में जब कथ्य की व्याप्ति और कवि के प्रयोजन की समीप परिस्थिति भाषा रूपी वीणा पर ध्वनि गर्भित तने तारों जैसी होती है तभी उससे कवि की समस्त जीवनानुभूति ध्वनित होती है और तभी उसकी सहज प्रतीति भी सहृदय को होती है, अन्यथा नहीं. संवेदना और शिल्प की यह अद्वैत स्थिति सामान्य प्रतिबद्ध कविता को नसीब नहीं होती. परंतु सौभाग्य से डॉ. वरुण कुमार तिवारी की इन समीक्ष्य कविताओं में यह बहुधा देखने को मिल जाती है. अतः समीक्ष्य कविता-संग्रह पठनीय, विचारणीय और व्यक्ति तथा संस्था दोनों के लिए संग्रहणीय है.

✉ सधार, पो. छितरौर, बेगूसराय-८५११२० (बिहार)

उम्मीद जगाती कहानियां

✍ वंदना मिश्रा

कृति : '१२ प्रतिनिधि कहानियां' : **मिथिलेश्वर**
प्रकाशक : मेघा बुक्स, एक्स-११, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२. **मूल्य** : २५०/- रु.

'मेघा बुक्स' से प्रकाशित 'मिथिलेश्वर का कथा-संग्रह' - '१२ प्रतिनिधि कहानियां' विषय वस्तु की दृष्टि से एक व्यापक असर छोड़ता है. इन कहानियों में यथार्थ है, शोषण है परंतु आश्चर्यजनक रूप से शालीन भाषा. आश्चर्यजनक इसलिए कि आजकल यथार्थ के नाम पर फूहड़ संवादों तथा अपशब्दों का प्रयोग अनिवार्य मान लिया गया है. विषय की विविधता, लेखक की जागरूकता एवं संवेदनशीलता को दर्शाती है. बिना भूमिका तथा बिना किसी के प्रमाणपत्र के आया यह संग्रह लेखक के आत्मविश्वास को सूचित करता ही है साथ ही पाठकों के ऊपर उनके विश्वास को भी दर्शाता है.

संग्रह की पहली कहानी 'नरेश बहू' श्रेष्ठ कहानियों में से एक मानी जा सकती है. नरेश बहू एक ऐसी स्त्री की कथा है जो ससुरालवालों के अत्याचारों से तंग आकर एक दूसरे गांव में शरण लेती है. यह गांव जिसे लेखक अपना गांव कहता है इस अर्थ में संवेदनशील कहा जा सकता है कि उसने इज़्ज़त से ज़्यादा व्यक्ति के जीवन को महत्व दे उस स्त्री को गांव में शरण दी. इस मोर्चे पर सबसे आगे रहने वाला युवक वीरू स्वयं एक तरह से निष्कासित जीवन जी रहा है. स्त्री के गांव में आने पर कुछ लोग उसका शोषण करना चाहते हैं परंतु स्त्री के साहस तथा वीरू के सहयोग से सफल नहीं हो पाते. लिहाज़ा लोगों ने वीरू तथा स्त्री (जिसे पति से संबंध न रखने पर भी उसकी पत्नी के नाम से ही जाना जाता था) के विषय में अफ़वाहें फैलानी शुरू कर दीं.

हमारा समाज चाहे बुराई करने वालों से हिसाब न मांगे परंतु सद्भावना का कारण ज़रूर जानना चाहता है और यह हिसाब सदैव स्त्री को ही देना पड़ता है. वीरू तथा स्त्री एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी बन जायें यह बात लोगों को मंज़ूर न थी. इसलिए बार-बार के झगड़ों का अंत वीरू को गांव से या दुनिया से ही हटा कर किया जाता है. वह स्त्री रोज़ वीरू का पेड़ के नीचे इंतज़ार करती है और वीरू के प्रति उसके अनकहे लगाव को पहले समझने का दावा करने वाले लोग उसकी इतनी स्पष्ट भावना को न समझने का नाटक करते हैं तथा उसे पागल कहने लगते हैं - "मुझे लगता है, मेरी तरह गांव के प्रायः सभी लोग जानते हैं कि जामुन वृक्ष के नीचे वह किसकी प्रतीक्षा करती है ? लेकिन जानबूझकर भी लोग अनजान बनने की कोशिश करते हैं. अपनी इस कोशिश में उस प्रतीक्षा किये जाने वाले व्यक्ति को इस गांव से बिल्कुल भुला देने की चतुर साज़िश मेरे गांव वाले काफ़ी समय से करते आ रहे हैं." स्त्री को सिर्फ़ काम्य समझने वाले उसकी कामना से किस तरह मुंह छुपाते हैं प्रमाण है यह कथा. वीरू ने कहीं उसकी भावना समझकर कहा कि "...अगर स्वेच्छा के साथ यह औरत तुम्हारे साथ भी रहना चाहे तो सिर्फ़ मुझे ही नहीं, बल्कि गांव के किसी को भी इस बात पर एतराज़ नहीं होगा."

वीरू की बात को गहरे डूबकर लोगों ने नहीं सोचा और उसे अनाचार फैलाने वाला कह दिया. हमारे समाज की दोहरी मानसिकता दर्शाती है यह कथा. एक तरफ़ अपनी इच्छा से उसका शोषण करना चाहते लोग तो दूसरी तरफ़ स्त्री की इच्छा के नाम से ही ताव खाते लोग और यह भी कि बरसों उस गांव में रहने पर भी लोगों ने उस स्त्री का नाम तक जानने की चेष्टा नहीं की बल्कि उसका वह पति जो पतित हो चुका था उसी के नाम से वह जानी जाती रही. "हालांकि अपने पति नरेश के अत्याचारों से वह पूर्णतः मुक्त हो गयी थी, लेकिन मेरे गांव के लोगों की मानसिकता अभी उतनी विकसित नहीं हुई थी कि नरेश के नाम से भी उसे मुक्त कर दें !"

'अपनी-अपनी जगह', कहानी एक ऐसे बूढ़े व्यक्ति की कहानी है जिसने सब्जियां बेच-बेचकर अपने बेटे को पढ़ाया और वही बेटा अपने घर में सब्ज़ी लगाने का विरोध करता है. एक प्रकार से यह सौंदर्य और उपयोग की लड़ाई है. बूढ़े का मानना है कि जो वस्तु उपयोगी न हो उसे धरती का रस खींचने का हक़ नहीं. यह 'गुलाब और कुकुरमुत्ता' की लड़ाई है, पेट की भूख और मन की भूख का विवाद है. "मुझे तो भाई साहब फूलों की गंध से उबकाई आती है. जो चीज़ पेट न भर सके उसे धरती का रस खींचने का कोई अधिकार नहीं." बूढ़ा फूल उगाने वाले को धरती का शोषक मानता है. (टॉलस्टाय का लगता यह कथन "इफ द पेजन्ट्स हैड लैंड, वी शुड नॉट हैव दोस इडिऑटिक फ्लावरबेड्स" याद आता है.)

बूढ़ा व्यक्ति कहता है, "वे सब स्वार्थी और बेवकूफ़ हैं. वे धरती का शोषण कर रहे हैं. धरती हमारी माता है. धरती से क्या उपजाना चाहिए, यह उन्हें कभी समझ नहीं आयेगा."

बेटे-बहू के बाहर जाने पर वह व्यक्ति सब्ज़ियों का शौक़ पूरा करता है. लेकिन जिस दिन उसकी सब्ज़ियां उखाड़ दी जाती हैं उसकी मौत हो जाती है और वह ज़मीन फूलों के लिए अभिशप्त हो जाती है. उपयोगिता व सौंदर्य के बीच द्वंद्व ख़ूबसूरती से दर्शाया गया है. 'देर तक' कहानी में गांव के संघर्ष से ऊबकर एक पिता तमाम प्रयास कर पुत्र को शहर भेजता है, परंतु शहर में लड़का और भी ज़्यादा शोषित हो जाता है. वह गांव वापस जाना चाहता है, पर पिता का मन टूट जायेगा, यह सोच कर नहीं जाता. यद्यपि पिता उसका कष्ट जानते तो उसी क्षण वापस

बुला लेते. तथापि कहानी एक आशात्मक संकेत देती है - 'अब लाख यातना सहकर भी वह उनके घर से नहीं भागेगा. लेकिन पहले की तरह निश्चिंत होकर भी अब वह नहीं रहेगा. अपनी मुक्ति के लिए किसी सही निर्णय की तलाश में जुट जायेगा.'

आज के अविश्वसनीय तथा बेराहत समय में जब लोग आंखें बंद करके अपने रास्ते चलते रहते हैं, वहां दूसरों के लिए न्याय की बात करना मानो 'मुसीबत मोल लेना है.' - 'मोल ली हुई मुसीबत' में कथा नायक दातून बेचने वाली एक लड़की को उस पीली वाली कोठी वाले साहब से बार-बार आगाह करता है जिसके लिए वह लड़की सिर्फ़ शिकार थी, "जबकि मैं अच्छी तरह जानता था, इस जानवरनुमा व्यक्ति के लिए यह लड़की एक नये शिकार के अलावा कुछ नहीं है." परंतु लाख चाहने पर भी वह (नायक) उस लड़की को बचा नहीं पाता.

कहानी 'पहली घटना' में एक बाल-विधवा जो अपनी इच्छाओं और समाज की बंदिशों के बीच घुट कर रह जाती है. यद्यपि वह अपनी आवश्यकताओं से लड़ती है, परंतु चोरी छिपे उनकी पूर्ति गलत समझती है - "उसे ट्रेनिंग में अपने साथ की लड़कियां कभी नहीं जचीं...हर रात लड़कियों की भ्रष्टता उसे देखने को मिलती थी. ...आख़िर एक ओढ़ी हुई ज़िंदगी के बीच उनका जीना क्या मायने रखता है ? छिपे-छिपे और चोरी-चोरी इच्छाएं पूरी करना और हर वक़्त दबे हुए महसूस करना क्या अपने साथ विश्वासघात करना नहीं है ?''

मीना और विपिन समाज की स्वीकृति से विवाह करना चाहते हैं तो समाज में विरोध होता है. पर चोरी-छिपे ऐसे कामों को नहीं. समाज की ऐसी अ-मनोवैज्ञानिक सोच ही कितनी लड़कियों का जीवन तबाह कर डालती है. स्कूल इंस्पेक्टर की सहानुभूति का अर्थ समझने वाली मीना एक मौलिक सोच वाली लड़की है, "मगर उसे स्पष्ट लगा था कि इंस्पेक्टर की सहानुभूति उसके प्रति नहीं, बल्कि उसके देखने से उत्पन्न हुई अपनी मन की काम-तृष्णा के प्रति थी."

पिता व भाई उसकी कमाई खाते हैं, गांव वाले सब भ्रष्ट हैं, पर इज़्ज़त की बात करते हैं, "वह लाख माथापच्ची करने के बाद भी नहीं जान पाती है कि इज़्ज़त क्या होती है ?... क्या जीवन की आवश्यकता को ठुकरा कर ढोंग की पक्षधरता करना ही इज़्ज़त है ?"

जब मीना के अपने घर वाले उसके प्रति असंवेदनशील हो जाते हैं तो डोमन जैसा क़ातिल उसका साथ देता है.

कथा 'अपने लोग' में सवर्णों की तथाकथित निम्न जातियों के प्रति मानसिकता को दर्शाया गया है. परंतु सुखद संकेत यह कि जब ये लोग इस मानसिकता को समझ लेंगे तो इनके हथियार नहीं बनेंगे ! तेतरी के कथन,... "लेकिन जीते जी अपनी आबरू नहीं लूटने देंगे...सभी छोटी जाति की औरतें एक जैसी नहीं होती हैं..." से बजरंगी में चेतना जगती है और वह किसुन चौबे की दुश्मनी भी स्वीकार कर तेतरी की इज़्ज़त बचाता है.

'बीजारोपण' कथा में 'धरीछन' अपनी पत्नी की इज़्ज़त के लिए सारे गांव से विरोध मोल लेता है और उसकी पत्नी जब मर जाती है तो लोग उससे पत्नी के हाथों और पैरों में कील ठेंकने को कहते हैं, जिसका वह जम कर विरोध करता है - "मैं किसी भी सूरत में अपनी पत्नी के हाथ-पांवों में कीलें नहीं ठेंकने दूंगा."

गांव वाले धरीछन की पत्नी पर चुड़ैल बनने का आरोप लगाते हैं तो दुःखी हो वह गांव छोड़कर चला जाता है, पर अपने पीछे एक परंपरा छोड़ जाता है, "धरीछन के गांव से जाने के दस साल के भीतर ही अलगू महतो, नरसिंह राय और सूर्यदेव सिंह ने धरीछन की परंपरा में अपने को खड़ा कर लिया है. ...अगर धरीछन रहता तो देखता कि उसने जो बीज लगाया था, वह अंकुरित हो गया है. अब वह उसकी छाया में आराम से रह सकता है."

'बीजारोपण' रिश्तों के सम्मान तथा अंधविश्वासों के विरोध की कथा है - "पूरे गांव में इस तरह के प्रेमी पहले कभी नहीं हुए थे. पति-पत्नी के इस अभूतपूर्व प्रेम की चर्चा इलाके में भी पसरने लगी थी.''

माधव जब तक स्वतंत्र, उन्मुक्त, छल-कपट से दूर गीत गाता था तब तक कला उस पर प्रसन्न थी, परंतु जब उसने कला को बेचना शुरू किया तो उसकी विद्या उससे रूठ गयी और कालांतर में वे नेता जिन्हें उसने अपनी कला बेची थी उसकी उपेक्षा कर चले जाते हैं. 'माधव की बेहोशी' एक चेतावनी है, सभी कलाकारों के लिए.

'झुनिया' कहानी यथार्थ का घिनौना चेहरा प्रकट करती है. गांव का वातावरण जहां ग़रीब, खेतिहर, मज़दूरों की बेटियों को बाज़ार में बिकने वाली सब्ज़ियों से ज़्यादा महत्त्व नहीं दिया जाता है. झुनिया हरिहर की बेटी थी और गांव के सबल लोगों के हाथों का खिलौना. सब कुछ जानते हुए भी विवश बाप-बेटी एक-दूसरे से सत्य छिपाते हैं. ऐसी स्थिति में भी सोमारू नाम का युवक झुनिया का हाथ थामना चाहता है, सारे शोषकों के बीच सोमारू झुनिया को अच्छा लगता है. एक ग़रीब और मजबूर लड़की जिसका बचपन ही ऐसी परेशानियों के बीच गुज़रा हो, जिसे चरित्रवान रहने की सुविधा न हो उसकी मजबूरी समझी जा सकती है. एक तरफ़ झुनिया है परिस्थितियों की मारी, दूसरी तरफ़ तथाकथित सवर्ण और पढ़ी लिखी विमली है, जो एक ओर प्रकाश से प्यार करती है, दूसरी ओर जोगिंदर से खुलकर बात करती है. यही नहीं, हरनाम से संबंध भी बना लेती है और उसके पिता तथा भाई बिना प्रतिरोध देखते रहते हैं. विडंबना यह कि

झुनिया चरित्रहीन मानी जाती है और विमली की धूमधाम से शादी होती है. राणा बहादुर, हरनाम, निखिल, जोगिंदर सभी दुनिया का शोषण करते हैं - "झुनिया को लगता है कि इस बीच एकमात्र सोमारू ही है जो तनिक भी नहीं बदला है."

गांव की टुच्ची राजनीति का अच्छा खुलासा किया गया है. सोमारू और झुनिया अंत में अपने गांव से चले जाते हैं, परंतु इस उम्मीद के साथ कि जब वे लौटेंगे तो नयी चेतना के साथ- "अब वे इस सत्य से अवगत हो चुके हैं कि जब तक उनके बीच के लोग उनकी लड़ाई का नेतृत्व नहीं करेंगे तब तक उनकी लड़ाई कभी कारगर नहीं होगी. उन्हें विश्वास है, वह समय शीघ्र ही आयेगा. तब वे अपने गांव में होंगे और उनकी भूमिका निर्णायक होगी. तब दोस्त और दुश्मन की पहचान में उनके लोग ग़फ़लत नहीं खायेंगे... सुखद भविष्य का संकेत है झुनिया-सोमारू की यह सोच. एक तरफ़ देह को हथियार की तरह इस्तेमाल करती विमली है तो दूसरी तरफ़ शोषित होने पर भी विचार की दृष्टि से इतनी जागरूक झुनिया.

गरीब चरवाहा जगेसर कुत्ता काटने के बाद भी मालिक के भय से काम पर आता है. किस तरह इन्सान को पशु में बदलती हैं स्थितियां, 'एक और हत्या' कहानी उस स्थिति का वर्णन करती है - जब क्रोध को मजबूरन मुस्कान में बदलना पड़े - ऐसे समय उसका सारा व्यक्तित्व चिनगारियों की तरह सुलगने लगता और उनके जबड़े तोड़ देने के लिए उसकी मुट्ठियां अनायास ही भिंच जाती हैं...पर अपने अंदर के इस तूफानी झंझावात को भी दम घोंटकर वह पी जाता है.''

अफ़सोस यह कि यह कहानी कहीं आशा का संकेत नहीं देती. धूमिल की कविता -

"दुःख होता है अगर लगी नौकरी छूट जाये.
पर ज़्यादा जब बार-बार गालियां सुन भी.
लौट आये कोई काम पर...''

सुचित्रा एक रूपवती स्त्री है. बचपन में उसकी सुंदरता देखकर लोग कहते थे कि इसका विवाह बिना पैसों के होगा, परंतु ऐसा कुछ नहीं होता. शादी की समस्या के कारण पिता उसकी पढ़ाई छुड़ा देते हैं. ससुरालवाले उसके सौंदर्य को भुनाने लगते. बड़े-बड़े लोग आने लगे और ससुरालवाले प्रश्रय देने लगे. "रघु चाचा को पर-पुरुष कहती हो वे तो रोज़ यहां आते हैं !" "क्या इस घर में मेरे आने से पहले भी आते थे ?" इस बार उसका पति निरुत्तर हो जाता है.

सुचित्रा को अपने ससुर की बातें अजीब लगती हैं. - "यह आदमी कहना क्या चाहता है ? उसने बचपन में ठगों की कहानियां पढ़ी हैं. उसे लगता है, जैसे उसका ससुर किसी ठगों के गिरोह का ही सरदार हो." वहीं परिवार वाले जब वह पढ़ना चाहती है तथा प्रो. शरण से मिलना चाहती है तो सास उसी बेरुख़ी से जवाब देती हैं - "वह ठीक आदमी नहीं...चरित्र का गिरा हुआ आदमी है..."

परंतु सुचित्रा रास्ता ढूंढ़ती है. 'रास्ते' कहानी में उसे वर्जनाओं, कठिनाइयों और व्यवधानों का समाना करना पड़ेगा तो करेगी. ...इधर अध्ययन के इस रास्ते में भले ही उसे विरोध और संघर्षों का सामना करना पड़ेगा, लेकिन मुक्ति का मार्ग इसी में है...''

'मेधना का निर्णय' कहानी भी इसी तरह स्वतंत्र निर्णय लेने वाले मज़दूर की कहानी है. - "उनके सामने एकमात्र रास्ता है अपने हक़ के लिए संघर्ष."

'नरेश बहू' तथा 'एक और हत्या' के अलावा मिथिलेश्वर जी की सारी कहानियां उम्मीद की किरण जगाती हैं. सहज, सरल भाषा तथा गंभीर विषयों के साथ यह संग्रह पाठकों और साहित्यकारों को पसंद आयेगा ऐसी आशा है.

जी. डी. बिनानी, पी. जी. कॉलेज,
मिर्जापुर (उ. प्र.) - २३१ ००१

सहज और सजग व्यंग्य के रंग

गोवर्धन यादव

'आये न बालम' (व्यंग्य-संग्रह) : **डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव**
प्रकाशक : शैवाल प्रकाशन, गोरखपुर **मूल्य** - १२५/- रू

डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव (सिविल-सर्जन) एक कुशल शल्य-चिकित्सक के साथ ही एक अप्रतिम साहित्यकार भी हैं.

वे पिछले तीन दशकों से भी अधिक से लिख रहे हैं, फिर भी अपने लेखन को लेकर इतने निस्पृह हैं कि रचना-कर्म से स्वयं को परे रखे हुए लगते हैं, जीवन और सृजन को लेकर वे उतने ही आत्म-सजग भी दिखाई देते हैं.

आपकी रचनाओं के संदर्भ इतने साफ़-स्वच्छ और पारदर्शी होते हैं कि अस्पष्टता का कोई चित्र नहीं बन पाता तथा ख़ास बात तो यह भी है कि हम उनकी रचनाओं को पढ़कर ठीक वैसे ही नहीं रह जाते जैसा कि उनको पढ़ने के लिए होते हैं.

डॉ. कौशल किशोर व्यंग्यों के अलावा ग़ज़लें भी खूब लिखते हैं. आपका पहला ग़ज़ल संग्रह - "है प्यास अभी" १९९७ में छपा था. "आये न बालम" आपका पहला व्यंग्य संग्रह है. देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपकी ग़ज़लें और व्यंग्य प्रकाशित हुए हैं तथा आकाशवाणी से नाटकों का भी प्रसारण हुआ है, तथा देशी व विदेशी मेडिकल जर्नल्स में आपके कई लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं.

वास्तव में व्यंग्य का मूल और प्राथमिक स्वर प्रतिष्ठान विरोधी होता है. एक व्यंग्यकार अपनी ओजस्वी लेखनी के

माध्यम से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, मिथ्याचारिता और पाखंडो को उजागर करते हुए यह मंगलकामना करता है कि उसका असर इतना व्यापक हो कि समाज में अमन-चैन क़ायम किया जा सके और यह हर व्यंग्यकार का दायित्व भी होता है कि वह उन सब पर चोट करे, जिन्हें वह ग़लत अथवा बुरा मानता है.

ख्यातिलब्ध समीक्षक एवं साहित्यकार श्री कांतिकुमार जैन ने इस ओर इशारा करते हुए लिखा है, "एक गंभीर मानवीय-करुणा इन व्यंग्यकारों को उन सबको हिलाने-गिराने और तोड़ने के लिए बाध्य करती है जो हमें सांस्कृतिक रूप से खंडहर का निवासी बनाये हुए हैं, एक विशाल मलवे के मालिक केरूप में हम बहुत जी लिए, अब हमें खुली हवा चाहिए. व्यंग्यकार अपने व्यंग्य द्वारा जीवन के सीलन भरे बदबूदार कमरे में खुली हवा का झोंका भरने का उद्देश्य लेकर चलता है. "वे यह भी लिखते हैं कि" व्यंग्यकार भ्रष्ट, अनैतिक मिथ्याचारी और पाखंडों को न भी बदल पाये तो निराश होने की आवश्यकता नहीं है, वह तो केवल उन लोगों को नैतिक समर्थन देता है जो ईमानदार, नैतिक व रूढ़िविरोधी है.

डॉ. कौशल किशोर अपनी निश्छल भावुकता में लिखते हुए उन सबकी बखिया उखाड़ते चलते हैं, जो समाज के लिए अमंगलकारी होता है. ऐसा करते हुए उसमें एक ख़ास बात यह भी बन पड़ती है कि जो उर्जा उन्होंने समाज और जीवन के मुठभेड़ से अर्जित की हुई अंतर्वस्तु है, उन्हें सस्ती भावुकता से भी बचाती है.

हां में हां मिलाकर चलने वाले, जिन्हें हम पिछ लग्गू भी कह सकते हैं की घातक प्रवृत्तियों को देखकर व्यंग्यकार "कुत्तों की पूछें" नामक अपने व्यंग्य के माध्यम से तंज करता है. कहना न होगा कि डॉगी भी पूंछ हिलाऊ संस्कृति में शामिल हो गया. वहां सब नीचे मुंह करके भौंक रहे थे और पूंछ ऊपर करके हिला रहे थे. जनता गुंडों के आगे पूंछ हिला रही थी. गुंडों राजनीतिज्ञों के आगे पूंछ हिला रहे थे. राजनीतिज्ञ और सरकारी उच्च-अधिकारी एक दूसरे का पूंछ हिलाकर अभिवादन कर रहे थे. यह सब इसलिए हो रहा था कि उनकी डायनिंग टेबिल पर आदमी की हड्डियां परोसी जा सकें.

"आये न बालम" जो इस व्यंग्य-संग्रह का शीर्षक भी है, लिखते हैं कि "सास समुदाय उसके बालम के न आने पर बहुत ख़ुश हुआ. कहने लगी. आदमी को गुलाम बनाने का गुर तो हमसे सीखना था. अब शादी के बाद न्यारी हो गयी तो भुगतो अरे नयी-नयी शादी के बाद कोई एकदम थोड़े ही मर्द से काम करवाने लगता है. जानवर को भी पहले खिलाना-पिलाना पड़ता है, हाथ फेरना पड़ता है, तब वह पालतू होता है."

व्यंग्य-संग्रह में 'भीखू शाह की मज़ार', बहारों फूल बरसाओ', 'झंडे का डंडा, ग़रीबी रेखा के नीचे', 'शांति समिति की बैठक', 'साहब की जड़े' और 'जंगल-जंगल' आदि व्यंग्यों को मिलाकर कुल ३१ व्यंग्य ही संग्रह में जगह पा सके हैं.

एक कुशल व्यंग्यकार अपनी पैनी एवं सजग लेखनी के माध्यम से उन सब बातों पर चोट करता चलता है जो उसे अप्रिय लगती है. व्यंग्यों की कथा-वस्तु के आधार पर हम उनका वर्गीकरण भी कर सकते हैं.

एक विचित्र किंतु सत्य बात यह उद्घाटित होती है कि इस लूटमार के समर में कोई किसी का सगा नहीं है. जो जैसा भी अवसर पाता है, उसे भुनाने में पीछे नहीं रहता. इस सब विकृतियों को दूर करने के लिए युद्ध-स्तर पर मोर्चे तो खोले गये हैं लेकिन उन सबके पीछे जनकल्याण की भावना व भलाई के लिए कोई स्थान नहीं है. हर कहीं सब्ज़ बाग़ दिखाये जा रहे हैं. केवल अपना हित साधने के चक्कर में आमजन की मुश्किलात बढ़ गयी हैं. शोषित-पीड़ित जनों की फरियाद सुनने के लिए अब न तो समय जन प्रतिनिधियों के पास है, न विधायक के और न ही मंत्रियों के पास. समय की इस दुरंगी चाल अथवा दोगले व्यक्तित्व के कारण ही सच और झूठ में फ़र्क कर पाना एक जोख़िम भरा कार्य सिद्ध होता जा रहा है. प्रमुख कारण भी शायद यही हो कि आदमी की आदमीयत भी संदिग्ध होती जा रही है. और यह तेज़ी से अपनी पहचान खोता जा रहा है.

व्यंग्यों के कुशल शिल्पी डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव का यह अनूठा प्रयास निःसंदेह समाज को एक दिशा अवश्य प्रदान करेगा. ऐसी उम्मीद तो की जानी ही चाहिए.

हम देखते हैं कि डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव के हाथ में कैंची होती है तो वे मानव के सड़-गल चुके अंगों को काटकर उन्हें नव-जीवन प्रदान करते हैं. ठीक इससे उलट, जब उनके हाथों में क़लम होती है तब वे अपनी लेखनी के माध्यम से सड़ी-गली, पक चुकी व्यवस्था पर भी कलम चलाने से परहेज नहीं करते.

एक सजग व्यंग्यकार यह जानता है कि विसंगतियों को दूर करने के लिए व्यंग्य से बड़ा कारगर हथियार और दूसरा हो ही नहीं सकता.

१०३, कावेरी नगर, छिंदवाड़ा (म. प्र.) - ४८० ००१.

एक प्रभावशाली व्यंग एकांकी संग्रह रंग-रचना

डॉ. भगीरथ बड़ोले

हम सब ग़ुलाम है (व्यंग्य एकाकी संग्रह) : **रमेश मनोहरा**
प्रकाशक : अमृत प्रकाशन, देशपाण्डे काम्पलेक्स, हुजरात रोड, नया बाजार, ग्वालियर, **मूल्य** - १५०/- रु.

कविता, कहानी, नाटक आदि विविध विधाओं में समान रूप से रचनारत श्री रमेश मनोहरा मूलतः स्वस्थ सामाजिक

चेतना तथा प्रगतिशील मानवीय मूल्यों को महत्त्व देने वाले रचनाकार हैं. विविध पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होने वाली उनकी रचनाएं तथा प्रकाशित पांच कृतियां इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं, जिसके लिए उन्हें अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर सम्मानित भी किया गया है. प्रस्तुत नाट्य-कृति हम सब गुलाम है. उनका सद्यः प्रकाशित व्यंग्य एकांकी-संग्रह है, जिसमें निहित पांच एकांकियों द्वारा लेखक ने एक ओर सामाजिक विसंगतियों पर करारे प्रहार किये हैं तो दूसरी ओर नये परिवर्तन की आकांक्षा द्वारा रचनाधर्मिता के दायित्त्व बोध को भी प्रकट किया है.

प्रस्तुत नाट्य संग्रह का प्रथम एकांकी 'हम सब गुलाम हैं' शीर्षक रचना है, जो राजनीति के आश्रय में पल रही गुंडागर्दी को तो बेपर्दा करती ही है, पुलिस-प्रशासन की भ्रष्ट प्रवृत्तियों को विशेष रूप से बेनकाब करती है और इसी क्रम में आम लोगों के दुख-दर्द को उकेरती हुई उनके भीतर जागे हुए आक्रोश तथा विद्रोही रूप का बख़ूबी रेखांकन भी करती है. दूसरा एकांकी 'मंत्री का दरबार' भी देश में मौजूद दुर्व्यवस्था की बखिया उधेड़ता है, जहां चापलूस और भ्रष्ट लोगों की भीड़ भाड़ तथा पूछ-परखे है, किंतु आम जन की समस्याओं को सुनने वाला कहीं कोई नज़र नहीं आता. तीसरा एकांकी 'अंधा बांटे रेवड़ी' नशा खोरी को केंद्रीय समस्या बना कर स्पष्ट करता है कि दोहरे व्यक्तित्व वाले मुखौटेबाज नेता ही इसके ज़िम्मेदार हैं. चौथा एकांकी 'पटाक्षेप' तथा पांचवा 'सुबह का भूला' दहेज़ की दानवी समस्या से जुड़े हुए हैं. किंतु 'पटाक्षेप' में झूठी शान दिखाने की प्रवृत्ति पर भी प्रहार हुए है, जबकि 'सुबह का भूला' में समस्या का अत्यंत मौलिक तरीके से समाहार किया गया है.

यह सत्य है कि नाट्य लेखन एक दुरूह लेखन है. अनेक मंचीय प्रतिबद्धताओं को दृष्टिपथ में रखकर ही इसकी रचना होती है और यह कहने में कोई संकोच नहीं कि श्री मनोहरा ने इन चुनौतियों का सफलता से सामना किया है. राजनीतिक, प्रशासनिक तथा सामाजिक क्षेत्र से जुड़े वस्तुविन्यास में लेखक ने पुख़्ता संवेदनात्मक धरातल पर नाटकीय गति एवं मंचीय विधान का पूरा और पक्का ध्यान रखा है. अतः कहीं ऊब या अस्वाभाविकता अनुभव नहीं होती. यद्यपि अधिकांश एकांकियों में पात्र संख्या कुछ अधिक है तथा भाषा प्रयोग में भी अशुद्धियां एवं औपचारिक रूप जगह-जगह दृष्टिगोचर होता है, तथापि ये तमाम एकांकियां पाठकों एवं दर्शकों को समान रूप से प्रभावित करने तथा विसंगतिपूर्ण व्यवस्थाओं के ख़िलाफ़ जनमानस को किसी बदलाव के लिए तैयार करने में पूर्ण समर्थ हैं. ऐसे प्रभावशाली एकांकी संग्रह के प्रकाशन पर श्री रमेश मनोहरा निश्चित ही बधाई के पात्र हैं.

२८६, विवेकानंद कॉलोनी, फ्रीगंज, उज्जैन - ४५६०१०

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत 'कथाबिंब' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण :-

१. प्रकाशन का स्थान	: आर्ट होम, शांताराम सालुंके मार्ग,
	: घोड़पदेव, मुंबई-४०० ०३३.
२. प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम	: मंजुश्री
४. राष्ट्रीयता	: भारतीय
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई ४०० ०८८
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी मंजुश्री

मैं **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - *मंजुश्री*)

चला जाऊंगा दूर तक

तेज राम शर्मा

वसंत-ऋतु है और
अवकाश का दिन
आज मैं बहुत कुछ बनना चाहता हूं,

सबसे पहले
सूर्यमुखी बनूंगा
हवा के संग हिलाता रहूंगा सिर
सहस्त्र मुखों से पीऊंगा धूप
टहनियों पर सुनूंगा नयी कोयलों की कुलबुलाहट,
फूल जूही की चोंच बनूंगा
अमृत रस पी जाऊंगा
मंजनू के पेड़ पर
गौरैया के संग खूब झूलूंगा,
अख़बार बनूंगा आज
पन्ने-पन्ने पढ़ा जाऊंगा
तुम भी पुराना ट्रंक खोल दो
वर्षों में ऐसा कोई दिन नहीं था
कि बंद पड़े प्रेम-पत्रों को धूप दिखाना,

दूब की तरह बिछा रहूंगा
निश्चिंत सुनूंगा सभी स्वर
डिश ऐन्टेना की तरह
ऊपर के सभी संकेतों को
पकड़ लूंगा,

निर्वाण के स्मित-सा कोई मुखौटा
आज पहन लूंगा
पीपल के सूखे पत्ते की तरह
बड़बड़ाऊंगा कुछ
और हवा के साथ नृत्य करते हुए
खिंचा चला जाऊंगा दूर तक.

श्री रामकृष्ण भवन, अनोडल, शिमला-१७०००३

अंगूठी

शशिभूषण बड़ोनी

दोस्तों की उंगलियों में पहनी हुई
चमकती महंगी अंगूठियां देख
पहन ली मैंने भी
किसी तरह ज़रूरतों की
जबरन कटौती कर
एक अदद सोने की अंगूठी,
पहनने के बाद
लगी मुझे वह एक चमत्कारी अंगूठी
क्योंकि होती रहती उसमें
कुछ विशेष अवसरों पर चुभन,
जब थी मां पिछली बार बीमार
चुका नहीं पाया था मैं
दवाइयों के बिल,
चुभती रही अंगूठी कई बार
बच्चों की फीस समय पर
न दे पाया था जब-जब
चुभती रही थी अंगूठी तब-तब,
पत्नी के उन तानों पर भी
होती रहती थी अंगूठी में चुभन
है नहीं उसके पास
एक अदद भी महंगा कंगन
फिर एक दिन चुभन बढ़ गयी इस हद तक
जब राशन वाले ने
तकाजा और तारीफ़ की एक साथ,
बहुत फब रही थी अंगूठी
आपके हाथ में जनाब
है कुछ बैलेंस
पिछले माह का हिसाब.

राज. सेंट मेरीज चिकित्सालय,
मसूरी २४८ १७९

विश्व बोध

हितेश व्यास

मैं संकट के विकट वन से
निकल आऊंगा,
सुरक्षित या घायल हमेशा की तरह,
जीवन-पथ में धुंध है, धुंधलका है
समाधान की रोशनी लापता है,
चले बिना रास्ता पार नहीं हो सकता
इसलिए चलूंगा,
विवेक का कुतुबनुमा बतायेगा दिशाएं
हालात की बेहोशी के बावजूद कुछ है
जो जागता रहता है,
एक सुबह है जिसे मैं पा ही लूंगा
उस अंधेरे को चीर कर
जिसे छूट है सघन होने की,
निकाल लाऊंगा सूरज,
और रख दूंगा आंवले की तरह
तुम्हारी हथेली के बीचोबीच.

के. आर. २६१, सिविल लाइन्स,
कोटा (राज.) ३२४००१

आओ घास के मैदान की ओर चलें

✍ रवींद्र स्वप्निल प्रजापति

आओ घास के मैदान की ओर चलें
यह मैदान अकेले खड़े होने के लिए सुविधाजनक है
यह कोमल हाथ है जिसको हम पकड़े रहना चाहते हैं
यह किसी की गोद जैसा है
या बचपन में मां के आंचल जैसा
शादी से पहले कल्पना की तरह,

यह मैदान बुढ़ापे के लिए पुरानी स्मृतियों का कैलेंडर है
स्वतंत्रता सेनानियों ने इसकी दूब में पिस्तौलें रखी थीं
यह निर्दयी है इसने अपनी छाती पर हज़ारों फांसियां दी हैं,

यह शहर के बीच में है
यह पहचान देता है सभ्यता को और जान के बराबर
क़ीमत मांगता है,
तुम हिम्मत वाली लड़की हो तो आओ हाथ में हाथ डाल कर खड़े होते हैं
तुम लड़के हो तो आओ मैदान में दौड़ लगाते हैं,
ज़िंदगी भर चलते रहने के लिए यहां कोई फुटपाथ नहीं है,
आओ उस ओर चलें जहां घास का मैदान है,
घास का मैदान धरती का आंगन है जहां दौड़ना अभी मना नहीं है.

वह दृश्य में चला जाता है

वह देखता रहा
उसके सामने पेड़ था उसकी पत्तियां शाखाएं और रौनक छायी हुई थी
सब एक तने पर था जैसे पिता के होने से घर होता है,

वह ब्राउस करता है चारों तरफ़ और देखता है
पेड़ के पास एक घर है और उसमें लड़की रहती है
रुक रुक कर हवा में पत्तियां हिलती रहती हैं
जैसे यादें आंखों से निकलकर पत्तियों में हिल रही हैं,

वह कुछ भी नहीं सोचता
और पेड़ के बैकग्राउंड में नीला आसमान देखता रहता है
पेड़ के पास लड़की आती है जैसे उसने स्क्रीन पर ड्रा किया है
स्क्रीन में कुछ फूल हैं और उसके हाथ में माउस
वह अपनी आंखें टूल की तरह यूज करता है
वह यादों की पत्तियों को डिलीट कर देता है
वह लड़की को बेंच पर बैठा देता है
और कुछ सितारे लाकर उसके पास पेस्ट कर देता है,
पेड़ चमक उठता है
लड़का ब्राउस करता है और देखता है,
जो उसे बिल्कुल पसंद नहीं उसे पेस्ट और डिलीट करता है
वह बहुत जल्दी कट करता है अपने दृश्य के अनावश्यक अंग
वह देखता है लड़की के घर के पास अच्छी सड़क और नीला आसमान,

वह बैठा हुआ है
चीज़ों को देखता है और आंखों से रिसीव करता है
वह दृश्य से जुड़ता है और उसमें चला जाता है.

✉ राज एक्सप्रेस, आनंद नगर, भोपाल, (म.प्र.)

लघुकथा

युग-आवश्यकता

✍ आनंद बिल्थरे

उसने आश्चर्य से देखा, एक रूपसी सोलह-श्रृंगार किये, हंसती, मुस्कुराती, पायताने बैठी, उसके पांव दबा रही है. उसे चैतन्य जानकर वह बंकिम कटाक्ष से बोली - आर्य मैं असत्य हूं. हर युग में मेरा यही, शाश्वत परिचय रहा है. मुझे लगा कि निकट भविष्य में, शीघ्र ही आपको मेरी आवश्यकता पड़ेगी और मुझे आपकी. अपनी इसी आकांक्षा के साथ, मैं परस्पर सहयोग की अपेक्षा रखती हूं.

- महाशय मैं भी इसी उद्देश्य से आपके समीप आया हूं.

उसने सिर घुमाकर देखा, एक कृशकाय, जीर्णशीर्ण वस्त्रों में लिपटा व्यक्ति, सिरहाने, द्वार से सट कर खड़ा है.

वह हाथ जोड़ कर बोला, - श्रीमन, मैं सत्य हूं. युग युगों से मेरा यही परिचय रहा है. आपकी सत्य निष्ठा, ईमानदारी के लिए, आपके पूर्वजों की तरह, मैं आपके साथ भी सहयोग करना चाहता हूं.

वह कुछ देर, युग आवश्यकता की तुला में, किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा, अपने आपको तौलता रहा. फिर निश्चयात्मक स्वर में बोला - देखिए, आप दोनों अपनी जगह ठीक हैं. चूंकि मैंने सबसे पहले रूपसी को देखा है, मेरे लिए, उसका साथ देना, नीति सम्मत तो है ही, धर्मसम्मत भी है.

उसका इतना कहना था कि रूपसी ने इठलाकर अपनी भुजवल्लरी उसकी गर्दन में डाल दी और दूसरे ही क्षण उसकी आंख खुल गयी.

वह शीघ्रता से उठा-प्राची में, भोर का तारा उग आया था. अब उसके मन में कोई संशय शेष नहीं बचा था. वह, निस्पृह भाव से प्रातः राजभवन में आयोजित होने वाले शपथ समारोह में जाने की तैयारी करने लगा.

✉ प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.) ४८१ ००१

ग़ज़लें

✍ डॉ. शंभुनाथ तिवारी

दुनिया में मुहब्बत से हर बशर को देखना ।
बेहतर है अपने आपसे कमतर को देखना ।।
औरों के लिए जान लुटाता है किस तरह ।
बेचैन परिंदे के जां-जिगर को देखना ।।
कश्ती फंसी हुई हो हवादिश में जिस घड़ी ।
तब खेलते तूफां से समंदर को देखना ।।
बाक़ी न बची हो कोई जब आख़िरी उम्मीद ।
ऐसे में दुआओं के भी असर को देखना ।।
पर्वाज की चाहत है मगर उड़ नहीं सकता ।
पिंजड़े में परिंदे के मुकद्दर को देखना ।।
मंजिल है दूर और अकेले सफर में हों ।
उस कशमकश में मील के पत्थर को देखना ।।
आती नहीं है नींद जो तुमको किसी तरह ।
सोते किसी मजदूर के बिस्तर को देखना ।।

जज़्बा कोई अख़लाक से बेहतर नहीं होता ।
कुछ भी यहां इनसान से बढ़कर नहीं होता ।।
उड़ने की अगर चाह हो तो आस्मां कम है ।
माना कि आदमी के कोई पर नहीं होता ।।
रोने से उनके सामने क्या फ़ायदा जिनका ।
दामन किसी के आंसुओं से तर नहीं होता ।।
कोई सुनेगा हाले-दिल हमको यक़ीन है ।
हर आदमी जहान में पत्थर नहीं होता ।।
डूबेगा वही जिसमें हुनर डूबने का है ।
किसने कहा आंखों में समंदर नहीं होता ।।
सोने की तरह तपकर निखरता है आदमी ।
पैदाइशी कोई भी सिकंदर नहीं होता ।।
क़ोशिश से ही इन्सान को मिलती हैं मंजिले ।
मुट्ठी में कभी बंद मुकद्दर नहीं होता ।।

टाइप-II/२, राजकीय आवास, मजिस्ट्रेट कॉलोनी, कोटा रोड, भीलवाड़ा-३११००१. (राज़.)

लघुकथा

सार्थक कहानी

✍ डॉ. वी. रामशेष

उस दिन आकाश बहुत ख़ुश था. उसकी मनोकामना जो पूरी हो गयी थी. ख़ुशी के मारे उसके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे.

हां ... उसकी एक कहानी एक पत्रिका में प्रकाशित हो गयी थी. उसी को मालूम था कि इस कहानी के प्रकाशन में उसे कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा था. उसने कई पत्रिकाओं को यह कहानी भेजी थी. वैसे तो ज़्यादातर पत्रिकाओं से कहानी वापस आ जाती. कुछ संपादक उसकी कहानी की तारीफ़ करते, पर एक न एक कारण देकर छापने से इन्कार कर देते थे. कहीं से लिख कर आता था कि भाषा ठीक नहीं है ... कहीं से आता कि कहानी छोटी है ... अथवा कहानी उस पत्रिका के स्तर की नहीं है, आदि, आदि.

पर अब जिस पत्रिका में कहानी प्रकाशित हुई उसका स्तर भी अच्छा था. सबसे पहले छपी कहानी घरवालों को दिखाई, फिर पत्रिका की दस प्रतियां बुक स्टाल से ख़रीदीं और अपने मित्रों को बांट दीं. सबने कहानी की तारीफ़ की और कहा कि आकाश अवश्य एक प्रसिद्ध लेखक बनेगा.

एक दिन आकाश समुद्र के किनारे बैठा सोच रहा था.

वह अगली कहानी के कथ्य पर विचार कर रहा था. इतने में वहीं से एक चना बेचने वाला गुज़रा. वह कह रहा था – 'बाबूजी चने लो, एक रुपये में एक पुड़िया !' जब वह आकाश के पास आया तो आकाश ने समय काटने के इरादे से तीन पुड़ियां ले लीं.

आकाश ने एक पुड़िया खोली और धीरे-धीरे दाने खाने लगा. अचानक उसकी नज़र पुड़िया के काग़ज़ पर पड़ी. वह एक कहानी का अंश था. आश्चर्य के साथ उसने शेष दो पुड़ियाएं भी खोलीं. यह क्या, एक पन्ने पर उसकी कहानी थी ! उसने चने वाले को बुला कर पूछा कि ये काग़ज़ कहां से मिले ? 'जी, मैंने रद्दी बेचने वाले से लिये हैं, देखिए उसी पत्रिका की और भी प्रतियां हैं.' उसने अपनी थैली खोलकर दिखाई.

पहले आकाश को ग़ुस्सा आया. पर बाद में वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा और सोचने लगा कि आख़िर मेरी कहानी कम से कम चने बेचने वाले के तो काम आयी !

आकाश का व्यवहार चने वाले की समझ में नहीं आया कि यह आदमी अचानक पागल की तरह क्यों हंसने लगा.

बी. एच.-२/४३ केंद्रीय विहार, खारघर, नवी मुंबई ४१० २१०

लेटर बॉक्स

"कथाबिंब" के जुलाई-दिसंबर ०५ अंक में 'आमने-सामने' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित भोला पंडित 'प्रणयी' का आत्म-वृतांत बहुत ही सच्चा, बेधक और प्रेरणादायक लगा. सामान्यतः हमारे यहां इस तरह के आत्म-कथ्य आत्मश्लाघा, आत्मदया या अतिरिक्त प्रतिरोधपरक लफ़्फ़ाज़ी से नहीं बच पाते. पर इस वृतांत की सत्यनिष्ठा, यथातथ्यता न केवल हमारे देश और समाज के 'आख़िरी आदमी' की स्वयं को कैसी भी परिस्थिति से उबार लेने की अंतर्निहित क्षमता को उजागर करती है, वरन् मनुष्यमात्र की आत्मोद्धारक, आत्मनिर्माणकारी संभावना पर आस्था जगाती है - और यह बिना किसी भावुकता या बौद्धिक लफ़्फ़ाज़ी के.

सलीम अख़्तर की कहानी अच्छी लगी. कहानी में कुछ ऐसी बात है जो पकड़ती है दिलो-दिमाग़ को, कहीं कोई सच्चाई है, मनुष्य के मन की, अनुभव की, जो इस कहानी को सार्थक बनाती है. अंक का संपादकीय भी अच्छा लगा.

✤ **रमेश चंद्र शाह**

एम-४, निराला नगर, भदभदा रोड, भोपल-४६२००६

... कुछ अन्य प्रतिक्रियाएं (पृष्ठ ३ से आगे)

"कथाबिंब" का जुलाई-दिसंबर, २००५ अंक मिला. इस अंक की सभी रचनाएं उत्कृष्ट हैं. सलीम अख़्तर, जयनारायण, डॉ. प्रकाशकांत और भगीरथ शुक्ल की कहानियां विशेषकर ध्यान खींचती हैं. इन कहानियों के संदर्भ भले ही अलग हों लेकिन समाज में महिलाओं की स्थिति का यह ख़ुलासा करती हैं. देश की दस फ़ीसदी महिलाओं ने शिक्षा के बूते अपनी दशा को अवश्य सुधारा है लेकिन नब्बे फ़ीसदी महिलाएं आज भी सभ्य समाज की तंग सोच से त्रस्त हैं. आरक्षण के जरिए भले ही महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा हासिल हो जाये लेकिन जब तक संकीर्ण सोच में परिवर्तन नहीं आता, तब तक किसी बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती. 'आमने-सामने' में भोला पंडित 'प्रणयी' ने बड़ी ही साफ़गोई से अपने जीवन के पृष्ठों को पलटा है, वही साफ़गोई उनकी रचनाओं में भी नजर आती है. देवेंद्र पाठक, राजन, वेद हिमांशु की ग़ज़लें व नरेंद्र आहूजा की लघुकथा कम शब्दों में बहुत कुछ कहती हैं. रचनाओं के बेहतर चयन के लिए आप निश्चित ही बधाई के पात्र हैं.

✤ **मोहन सिंह रावत**

'गुंजन', स्टोनले कंपाउंड, तल्लीताल, नैनीताल-२६३ ००२.

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत 'कथाबिंब' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण :-

१. प्रकाशन का स्थान	: आर्ट होम, शांताराम सालुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई-४०० ०३३.
२. प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम	: मंजुश्री
४. राष्ट्रीयता	: भारतीय
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई ४०० ०८८
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी मंजुश्री

मैं **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - *मंजुश्री*)

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००९ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१

मधुमति (मा.) - वेदव्यास, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरन मगरी, सेक्टर-४, उदयपुर ३१३ ००२

वागर्थ (मा.) - विजय दास, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७

समाज प्रवाह (मा.) - मधुश्री कावरा, गणेश बाग, जवाहर लाल नेहरू रोड, मुलुंड (प.), मुंबई ४०० ०८०

साहित्य अमृत (मा.) - डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२

साहित्य क्रांति (मा.) - अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश,' भार्गव कॉलोनी, गुना ४७३ ००१ (म. प्र.)

शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१

शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९

परिकथा (द्वै.) - नमदिश्वर, २५ बेसमेंट, फेज़-५, इरोज गार्डन, सूरजकुंड, नयी दिल्ली-११००४४

अमीबा (त्रै.) - अजय भारद्वाज, १२/३ श्यामपुरी, खतौली - २५१०२०१

अरावली उद्घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४

अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३

अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, डी-१३१ रमेश विहार, निकट ज्ञान सरोवर, अलीगढ़ (उ. प्र.)

असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड्ई, पो. पन्नूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)

अक्षरा (त्रै.) - विजय कुमार देव, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२

आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया - ४६१ ७७५ (म. प्र.)

औरत (त्रै.) - मेनका मल्लिक, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४

अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, अंचल भारती प्रिंटिंग प्रेस, रा. औ. आस्थान, गोरखपुर मार्ग, देवरिया - २७४ ००१

अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४

अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६

कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४

कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१

कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३

कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१

कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', विकास भवन, बहराइच - २७१ ८०१ (उ. प्र.)

कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१

कौशिकी (त्रै.) - कैलाश झा किंकर, क्रांति भवन, चित्रगुप्त नगर, खगड़िया - ८५१ २०४

गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२

तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१

तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१

दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२

दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)

द्वीप लहरी (त्रै.) - डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, हिंदी साहित्य कला परिषद, पोर्ट ब्लेयर ७४४ १०१

डांडी-कांटी (त्रै.) - मधुसिंह विष्ट, भगवान नगर, नलपाड़ा, सैंडोज बाग, कापुर बावड़ी, ठाणे ४०० ६०७

नारी अस्मिता (त्रै.) - डॉ. रचना निगम, १५ गोयागेट सोसायटी, शक्ति एपार्टमेंट, बी-ब्लॉक, एस/३, वडोदरा - ३९० ००४

निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२

परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६

पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८

प्रगतिशील आकल्प (त्रै.) - डॉ. शोभनाथ यादव, पंकज क्लासेज, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई ४०० ०६०

प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७

प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६

पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, निराला नगर, गोशाला रोड, मुजफ्फरपुर ८४२ ००२ (बिहार)

पुरवाई (त्रै.) - पद्मेश गुप्त, (भारतीय संपर्क : ऋचा प्रकाशन, डी-३६ साउथ एक्सटेंशन, पार्ट-१, नयी दिल्ली ११० ०४९

बूंद-बूंद सागर (त्रै.) - डॉ. सुरेंद्र प्रसाद 'केसरी', पोस्ट बॉक्स नं. २, रक्सौल ८४५ ३०५

प्रोत्साहन (त्रै.) - जीवतराम सेतपाल, 'सिंधु' बेसमेंट, २०५/३१, मेन रोड, शीव (पू.) मुंबई - ४०० ०२२

भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८

मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१

मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१

युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबू, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)

युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५

वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४

वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, देवकीधाम, ए-३ वेस्ट बोरिंग कैनाल रोड, पटना - ८०० ००१

विषय वस्तु (त्रै.) - धर्मेंद्र गुप्त, २७४ राजधानी एन्क्लेव, रोड नं. ४४, शकूर बस्ती, दिल्ली - ११० ०३४

वैखरी (त्रै.) - डॉ. अमरेंद्र, लाल खां दरगाह लेन, विश्वविद्यालय पथ, भागलपुर - ८१० ००२

संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४

समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७

साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१

सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१

सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ ब्ल्यू ओसन, ब्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७

साहित्यम् (त्रै.) - अशोक वर्मा, १/एफ सरस्वती नगर, टुइला डुंगरी, गोलपुरी, जमशेदपुर-८३१ ००३

संवदिया (त्रै.) - भोला पंडित 'प्रणयी' , जयप्रकाशनगर, वार्ड नं.-७, अररिया-८५४३११

संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५

सही समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ई-५०३, गोकुल रेजीडेंसी दत्तानी पार्क, वेस्टर्न एक्सप्रेस हाइवे, कांदिवली (पू.), मुंबई - ४०० १०१

स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९

शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं. १६४, आसनसोल ७१३३०१

शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़

शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२

हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२

अविरल मंथन (अ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२३ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०

कथ्यरूप (अ.) - अनिल श्रीवास्तव, डी-२२४ तुलारामबाग, इलाहाबाद - २११ ००६

कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१

नई कहानी (अ.) - सतीश जमाली, ४२ अलोप शंकरी अपार्टमेंट १७७ अलोपीबाग, इलाहाबाद - २११ ००६

मित्र (अ.) - मिथिलेश्वर, महाराजा हाता, कतिरा, आरा - ८०२ ३०१

पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०

सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४

समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४

समीहा (अ.) - शेखर सावंत, 'देवायतन', प्रो. कॉलोनी, बेगूसराय - ८५१ १०१

सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

कुछ कही, कुछ अनकही

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

आम आदमी की जेब की पहुंच तक आ सकें, लेकिन तब अर्जुन सिंह ने ही विरोध किया था. लेकिन आज वे ही इन संस्थाओं में आरक्षण बढ़ाने की मांग कर रहे हैं - संशोधन बिल राष्ट्रपति के पास भेजा गया है. कुछ छात्रों ने राष्ट्रपति को ज्ञापन दिया है कि यदि वे आरक्षण बिल को मंजूरी दे देंगे तो उनमें से कम से कम २२ छात्र ऐसे हैं जो आत्मदाह कर लेंगे. दिल्ली, मुंबई, जयपुर, भोपाल, बैंगलौर और भी कुछ शहरों में आरक्षण विरोधी यह अभियान जोर पकड़ रहा है. उधर आरक्षण समर्थक कुछ राजनीतिज्ञ भी टकराव की स्थिति उत्पन्न करने पर आमादा हैं.

●

प्रधानमंत्री ने इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके रपट देने के लिए देश के आठ शीर्षस्थ विशेषज्ञों का 'नेशनल नॉलेज आयोग' गठन किया था. परंतु हमारे मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह ने आयोग के सदस्यों को ही 'अज्ञानी' करार कर दिया. इस पर, आयोग के अध्यक्ष और एक अन्य सदस्य ने इस्तीफ़ा दे दिया है. आख़िर अर्जुन सिंह किसके इशारे पर काम कर रहे हैं ? उनका एजेंडा क्या है ? क्या उनकी नज़र अगले वर्ष उत्तर प्रदेश चुनाव पर है ?

जनमानस की मूलभूत आवश्यकताओं से जुड़े ऐसे बहुत से मुद्दे हैं जिन पर सरकार को तुरत-फुरत कार्यवाही करने की आवश्यकता है किंतु इनको कालीन के नीचे खिसका कर व्यर्थ के मुद्दों को ठंडे बस्ते से निकाल लिया जाता है. उ. प्र. के एक कॉन्ग्रेसी सांसद ने जया बच्चन की राज्य सभा सदस्यता के साथ अन्य लाभ के पद को लेकर जनहित में याचिका दायर की. तब उसे नहीं मालूम था कि इसकी चपेट में स्वयं त्यागमूर्ति सोनिया गांधी भी आ जायेंगी. उन्होंने आनन-फानन में रायबरेली की लोकसभा सीट से इस्तीफ़ा दे दिया. दोबारा चुनाव हुआ और वे रिकॉर्ड मतों से विजित हुईं. पर यह किसी ने नहीं पूछा कि दो साल में दोबारा चुनाव का व्यय क्यों देश पर लादा गया ?

●

शीघ्र ही यह सरकार दो वर्ष पूरे करने जा रही है. 'आम आदमी' इन दो वर्षों की उपलब्धियों का हिसाब तो मांग ही सकता है !

अरविंद

पाठकों / ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

कथा (यू. के.) साहित्य सम्मान-२००६

'अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान'

असग़र वजाहत को (उपन्यास : 'कैसी आगी लगाई')

व

'साहित्य सम्मान'

गोविंद शर्मा को हिंदी सिनेमा पटकथा लेखन हेतु

२३ जून २००६ को

लंदन के हाउस ऑफ लॉर्डस् में प्रदान किया जायेगा.

तेजेंद्र शर्मा - मुख्य सचिव कथा (यू. के.)

७४-ए, पामरस्टन रोड, हैरो एंड वेल्डेस्टोन **HA3 7RW**

फोन : ०२० - ८८६१-०९२३, ०२० - ८९३०-७७७८

: प्राप्ति-स्वीकार :

आमुख कथा (उपन्यास) : डॉ. देवेंद्र सिंह, शैवाल प्रकाशन, चंद्रावती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर - २७३००१. मू. २००/-
गोधूलि बेला (उपन्यास) : डॉ. अरुणा श्याम, अमीवा प्रकाशन, १२/३, श्यामपुरी, खतौली (उ. प्र.) - २५१२०१. मू. १५०/-
प्रेम स्रोत (उपन्यास) : सूर्यदीन यादव, छात्र प्रकाशन, १० साहित्य भवन, पूरेगंगाराम, राजूपुर, सुलतानपुर (उ.प्र.) मू. १२५/-
नक्कारखाने की तूती (क. संग्रह) : बीरेंद्र सिंह गूंबर, जनता प्रकाशन, ए-७५३, डी.डी.ए. कॉलोनी, चौखंडी, नयी दिल्ली-११००१८. मू. १५०/-

है अमित सामर्थ्य मुझमें (क. सं.) अनिमा नरेश, किताबवाला, २०५ शिवानी, दौलतनगर, रोड नं. १, बोरीवली (पू.), मुंबई - ४०० ०६६. मू. ६०/-

प्रतिनिधि लघुकथाएं (ल. संकलन) : सं. डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', लेखनी प्रकाशन, फुलवारी शरीफ़, पटना - ८०१५०५. रु. १००/

बाज़ार (लघुकथाएं) : अरुण कुमार, पूनम प्रकाशन, ६-बी, कौशिकपुरी, पुराना सीलमपुर, दिल्ली - ११००३१. मू. १००/-
रस्ते में हो गयी शाम (संस्मरण) : प्रबोध कुमार गोविल, उद्योग नगर प्रकाशन, ६९५, न्यू कोट गांव, जी. टी. रोड, गाजियाबाद (उ. प्र.). मू. १००/-

बीस सुरों की सदी (कविता सं.) : विद्याभूषण, प्रकाशन संस्थान, ४७१५/२१, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. १००/-
एक पालकी चार कहार (काव्य) : तारा सिंह, मीनाक्षी प्रकाशन, एम.बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली-११००९२. मू. ४०/-
तुलसी मानस दर्शन (काव्य) : डॉ. ताराचंद पाल 'बेकल', क्रांतिमन्यु प्रकाशन, शांति निकेतन, एच-२१८, शास्त्री नगर, मेरठ. मू. १६०/-
सीप में बंद एहसास (काव्य सं.) : मंदाकिनी, बाबू मावली प्रसाद श्रीवास्तव साहित्य-पीठ, रायपुर (छ. ग.) मू. ५०/-
दूर तक सहराओं में (ग़ज़ल सं.) : नूर मुहम्मद 'नूर', बी.जे. पब्लिकेशन्स, १४ दुर्गा दास लेन, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३. मू. ८५/-

अभिलाषा (का.सं.) : कृष्ण कुमार यादव, शैवाल प्रकाशन, चंद्रावती कुटीर, दाऊदपुर, गोरखपुर-२७३००१. मू. १६०/-
एक तिली (हाइकू सं.) : सदाशिव कौतुक, साहित्य संगम, 'श्रमफल', १५२०, सुदामानगर, इंदौर - ४५२००९. मू. २०/-
बूंद-बूंद बादल (हाइकू) : राजेंद्र वर्मा, श्रुति प्रकाशन, ३/४७३, विकास नगर, लखनऊ-२२६०२२. मू. ३०/-

'किरण देवी सराफ ट्रस्ट' (मुंबई) के सौजन्य से प्रकाशित पुस्तकें

प्रेम ही पूजा (कहानी सं.) : अशोक कुमार राणा, मू. ५१/-, गुलिस्तां (गीत-ग़ज़ल) : मुकेश कुमार मासूम, मू. २०१/-, अंकुर फूटे (काव्य सं.) : सं. लालमणि यादव, मू. ६०/-
प्यारे लाल का पुलिंदा (व्यंग्य क.सं.) : हरिश्चंद्र, मू. १००, बसंती बयार (होली/फाग सं.) : सं. दिनेश बैसवारी, मू. २०/-
एक सजा है तेरा प्यार (काव्य सं.) : सुनील बडोला, मू. १००/-

'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार-२००५'

'कथाबिंब' के प्रकाशन का यह २७ वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २००५ के 'कथाबिंब' के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई !

सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु.)

ताले वाली डायरी - *डॉ. निरुपमा राय*

श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. प्रत्येक)

मौत की छलांग - *मनोज सिन्हा* ● **आज की पांचाली** - *जयनारायण*

उत्तम कहानी (५०० रु. प्रत्येक)

● **औरत सहाय नहीं** - *सलीम अख़्तर* ● **सांप और बिच्छू की कथा** - *डॉ. देवेंद्र सिंह*
● **कोहरा** - *सलाम बिन रज़ाक* ● **बिके हुए हाथ** - *डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी 'शलभ'*
● **भारत पूअर सोसायटी** - *सिद्धेश*

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. ***यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.***

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, मुंबई
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैया लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, पंचमढ़ी
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कोलकाता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, अनपरा, सोनभद्र
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, दिल्ली
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुवनी', मधुवनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, नवी मुंबई
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेके शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निंबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, फतेहगढ़
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)
८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, कोलकाता

→

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य...

८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़
९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुख़ाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुख़ाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इंदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली
११४) श्री कुलवंत सिंह, मुंबई
११५) डॉ. राजेश गुप्ता, भुसावल
११६) श्री साहिल, वेरावल (गुज.)
११७) डॉ. माधुरी छेड़ा, मुंबई
११८) सुश्री मंगला रामचंद्रन, इंदौर
११९) श्री पवन शर्मा, जुन्नारदेव, छिंदवाड़ा (म. प्र.)
१२०) डॉ. भाग्यश्री गिरी, पुणे
१२१) श्री तुहिन मिश्रा, मुंबई
१२२) सुश्री मधु प्रसाद, अहमदाबाद
१२३) श्रीमती मंजु लाल, दिल्ली
१२४) श्री सतीश गुप्ता, कानपुर
१२५) डॉ. बी. जे शेट्टी, नवी मुंबई

With Best Compliments From :

Shankarlal Kothari
(Govt. Appointed Valuers)

Mahalaxmi Jewellery

Govt. Appointed Valuers

Shop No. 3, Station View Bldg., N. G. Acharya Marg,
Chembur, Mumbai - 400 071. Tel.: 2524 1333

❖ **GOLD** ❖ **SILVER** ❖ **DIAMOND** ❖ **NAVAGRAHA STONE**

Exactly Opposite Chembur Railway Station

शुभकामनाओं के साथ

Mataji

milk centre

WHOLESALERS & RETAILERS OF MILK & MILK PRODUCTS

Distributors for Agarwal Milk & Milk Products,
Kikwi, Tal, Bhor, Pune.

Shop No. 2, 37, Thakur Cottage,
Opp. Corporate Park, S. T. Road,
Chembur, Mumbai - 400 071.

Tel.: 2524 6696

राजयोग

❖ गाय का दूध ❖ भैंस का दूध ❖ शुद्ध घी ❖ मक्खन ❖ पनीर ❖ मावा
❖ चक्का ❖ दही ❖ लस्सी ❖ श्रीखंड ❖ आम्रखंड ❖ क्रीम ❖ सीताफल रबड़ी
❖ बासुंदी ❖ हरा वटाणा ❖ मिक्स व्हेजीटेबल ❖ मैंगो पल्प ❖ अमेरीकन कॉर्न
❖ स्वीट कॉर्न ❖ बेबी कॉर्न ❖ मशरुम

महाबैंक फैमिली बैंकिंग कार्ड
खर्च...?... नहीं, बचत करने वाला कार्ड

महाबैंक फैमिली बैंकिंग कार्ड धारकों के लिए
उपभोक्ता, आवास एवं अन्य वैयक्तिक ऋण-योजनाओं के
ब्याजदर में १ प्रतिशत की छूट

जमा एक....
फायदे अनेक !

महाबैंक फैमिली बैंकिंग कार्ड*

पूरे परिवार के लिए फायदेमंद

- निःशुल्क ग्रीनलाईन मेडिकल कार्ड
- निःशुल्क क्रेडिट कार्ड
- निःशुल्क एटीएम कार्ड

इसके अतिरिक्त और बहुत कुछ

भारतीय कुटुंब प्रणाली को हमारा अभिवादन !

एक परिवार : एक बैंक

बैंक ऑफ महाराष्ट्र

प्रधान कार्यालय : लोकमंगल, 1501, शिवाजीनगर, पुणे - 411005

*पधारें : **www.bankofmaharashtra.com***

टोल फ्री नं. : 1800 222340 / 1800220888

** शर्तें लागू*

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ ६२८४.